ओ३म्

ग्रन्थ

न्यायतत्त्वबोधिनी

जिसको

मिश्र शालग्राम शास्त्री

हैड पण्डित गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर ने

श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीत भाष्यानुसार श्री गौतम मुनिकृत सूत्रों का संक्षिप्त भाषानुवाद कर बनाई ।

NYAYATATWA BODHINI

BY

MISRA SHALIGRAM SHASTREE

Head Pandit Government College, Ajmere

अजमेर

राजस्थान यन्त्रालय मैं छपी ।

प्रथमबार	सं० १९५०	मूल्य १)
प्रति ५००	सन् १८९४	डा० म० =)

भूमिका ।

सब से प्रथम मैं सर्वान्तर्यामी न्यायकारी सर्वशक्तिमान परम-कृपालु उस जगदीश्वर को साष्टांगप्रणाम कर प्रार्थना करता हूं कि हे जगत्पिता सच्चिदानन्द कहां तो परमप्राज्ञ महामहोपाध्याय तपोधन श्रीयुत गौतम मुनि प्रणीत अति गम्भीर न्यायदर्शनरूप अपार सागर और कहां मेरी अल्पबुद्धि इसलिये इस के पार होना अति कठिन है यद्यपि पण्डित शिरोमणि मान्यवर श्रीवात्स्यायन मुनिने इस अथाह समुद्र के पार होने के लिये भाष्यरूप दृढ़ नाव बना दी है पर खेवट के बिना खाली नाव से पार होना असंभव जान पड़ता है इसलिये यदि आपका कुछ कृपा कटाक्ष हो तो गोपद के समान इसके पार हो जाऊं । भ्रातृगणों आपलोगों के विनोदार्थ उक्त दर्शन का अनुवाद सरल आर्य भाषा में वात्स्यायन मुनिकृत भाष्यके अनुसार कियाहै यद्यपि वि-स्तार के भय से उक्त भाष्य का अक्षरशः अनुवाद नहीं किया तथापि जितने अंश की आवश्यकता देखी उसे नहीं छोड़ा और न उसके विरुद्ध कुछ लिखा है यद्यपि कई एक मेरे मित्रों ने मुझसे कहा था कि सूत्र लिख कर पहिले संस्कृत में पदार्थ और भावार्थ लिखकर फिर भाषा में अनुवाद होना चाहिये जैसे पातंजल दर्शन का पंडित रुद्रदत्तजी ने किया है तथापि मैंने ग्रन्थ के अतिविस्तृत होजाने के डर से वैसा नहीं किया क्योंकि आज कल के लोग अधिक परिश्रम उठाना प्रसन्न नहीं करते थोड़े श्रम से लाभ उठाने की इच्छा रखतेहैं फिर ग्रंथके बड़े होने से उसका मूल्य भी बढ़ जाता जिससे सर्व साधारण को लाभ नहीं पहुंचता और सच पूछिये तो ऐसे ग्रंथों का भाषानुवाद उन्हीं लोगों के लिये कियाजाता है जो लोग संस्कृत के विज्ञ नहीं पर दर्शनों के सिद्धान्तों के जानने की अभिलाषा रखतेहैं विद्वान तो मूल ग्रंथ से ही जान सक्ते हैं इस दर्शन में पांच अध्याय और पांचसौअड़तीस सूत्र हैं प्रथम अध्याय में प्रमाण आदि सोलह पदार्थ और उन के लक्षण कहे हैं दूसरे में प्रमाणों की परीक्षा तीसरे में प्रमेय की परीक्षा चौथे में प्रवृत्ति आदि की परीक्षा और पांचवें में जाति और निग्रह स्थानों का वर्णन किया है ।

यह भी ध्यान रखना योग्य है कि इस दर्शन में तीन बात मुख्य हैं प्रथम उद्देश द्वितीय लक्षण और तृतीय परीक्षा वस्तु के नाम मात्रके कथन को उद्देश कहते जैसे पृथ्वी जल तेज वायु इत्यादि वस्तु के असाधारण धर्म (अर्थात् जो उसीमें हो और में न हो) को लक्षण कहतेहैं जैसे पृथ्वी का लक्षण गन्धवती अर्थात् जिस में गंध हो उसे पृथ्वी कहते गंध पृथ्वी का असाधारण धर्म है जिसका लक्षण किया गया उसका यह लक्षण होसक्ता वा नहीं इस विचार का नाम परीक्षा है। अब मैं दर्शन रसिकों से प्रार्थना करता हूं कि यदि आप लोग यथावकाश इसके अवलोकन से कुछ लाभ उठावें तो मेरा भी श्रम सफल हो कैसी आनन्द की बात है कि जिस रसका स्वाद अतिकठिन संस्कृत भाषा के अच्छे अभ्यास करने से प्राप्त होता वह थोड़ीसी आर्यभाषा जानने ही से अनायास मिलजायगा यद्यपि पहिले दर्शन का विषय गूढ़ होने के कारण कुछ न्यून रोचक होगा पर जब चित्तलगाकर बराबर विचारा करोगे तो ऐसी चाट लगेगी कि फिर शीघ्र छूटैगी नहीं यही उत्कंठा होगी कि न्याय दर्शन तो देखा अब और शास्त्रों का भी रसलेना चाहिये अब मैं करुणा सागर परमेश्वर से यह विज्ञप्तिकर भूमिका को समाप्त करता हूं कि हे प्रभो हमारे देशवासी भाइयों की रुचि भलीभांति तनमन और धन से दर्शनों के प्रचार में हो और वह इस अनुवाद के अवलोकन से ज्ञान प्राप्त कर मेरे श्रमको सफल करैं इसके अनन्तर सहृदय विद्वज्जनों से सविनय मेरी प्रार्थनाहै कि यदि भ्रम से कहीं अशुद्धि रह गई हो तो कृपाकर सुधारदें वा मुझे सूचना करदें कि मैं शुद्ध करदूं क्योंकि भ्रम होना मनुष्य धर्म है सर्वज्ञ सर्वथा भ्रम रहित तो वही एक परमात्मा है अबमैं उन धार्मिक पुरुषों का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने इस उत्तम कार्य में मुझे सहायता दी श्रीयुत यावदार्य कुल कमलदिवाकर महाराणा श्री १०८ फतहसिंहजी जी. सी. एस. आई. तथा श्रीयुत गुण ग्राहक कृष्णगढ़ाधीश श्री १०८ शार्दूलसिंहजी जी. सी. आई. ई. ईश्वर सर्वदा इन की उन्नति करै॥ इति

अजमेर सम्वत् १९५७ भादों सुदी ३ बुधवार १२ सेप्टेम्बर सन् १८९३ } मिश्र शालग्राम शास्त्री हैड पण्डित गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर,

सूचीपत्र।

पाठक लोगों को प्रकरण ढूढ़ने में अधिक श्रम न हो इसलिये प्रकरणों का सूचीपत्र लिख दिया है यद्यपि न्याय भाष्य में अलग अलग प्रकरण स्पष्ट कर नहीं दिखलाये हैं तथापि न्याय सूत्र वृत्ति में उत्तम रीति से कह दिये हैं तदनुसार यह प्रकरणों का सूचीपत्र बनाया है सूत्र संख्या के अनुसार जो सूचीपत्र रचा जाता तो एकतो अतिविस्तृत होता दूसरे प्रकरण के ज्ञान विना वैसा लाभ न होता जैसा कि इस से होगा।

न्याय तत्व बोधिनी ।

दोहा ।

श्री गुरु चरण सरोज को वंदि हृदय धरि ईश ।
न्यायशास्त्र भाषा करूं जो कृति विज्ञ मुनीश ॥

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानांतत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥१॥

प्रमाण प्रमेय इत्यादि सोलह पदार्थोंके तत्वज्ञान से मोक्ष होता है जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते और जो प्रमाण से जाना जाता है उसको प्रमेय कहते हैं जो वस्तु वास्तव में जैसी है उस कोवैसी ही जानना इसी को तत्वज्ञान कहते हैं संशय आदि पदार्थों के लक्षण यद्यपि भाष्यकार (वात्स्यायन) ने यहां ही करदिये हैं पर मैंने अभी इसलिये छोड़दिये कि सूत्रकार ने इनके लक्षण आप ही आगे लिखे हैं पुनः दो बार लिखने से पुनरुक्ति होगी और व्यर्थ विस्तार बढ़ेगा ।

प्रश्न—तो क्या तत्वज्ञान के अनन्तर ही अर्थात् ज्यों हीं उक्त पदार्थों का तत्वज्ञान हुआ और मोक्ष सिद्ध है ? नहीं तो फिर तत्वज्ञान से क्या होता है ।

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदनन्तरापायादपवर्गः ॥२॥

तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान का नाश होता उस से दोषों का अभाव दोषाभाव से प्रवृत्ति की निवृत्ति उस से जन्म का दूर होना उसके न होने से सब दुःखों का नाश बस दुःख के अत्यन्त नाश का ही नाम मोक्ष है तत्व ज्ञान के विरोधी ज्ञान को मिथ्या ज्ञान कहते हैं जैसे आत्मा कोई पदार्थ नहीं जो आत्मा नहीं उसे आत्मा जानना दुःख में सुख बुद्धि अनित्य में नित्य अरक्षक में रक्षक सभय में निर्भय विना कारण जन्म का होना और बिना ही कारण जन्म की निवृत्ति मुक्ति बडी कठिन है क्योंकि सब कामों का उपराम होना मोक्ष है सब पदार्थों के बियोग होने से बहुत मंगलों का लोप होगा तो बुद्धिमान सब सुख के अभाव रूप मोक्ष की क्यों इच्छा करेगा यह सब मिथ्या ज्ञान हैं इस मिथ्या ज्ञान से इष्ट वस्तु में प्रीति और अनिष्ट में द्वेष होता है राग द्वेष से ईर्षा माया लोभ आदि दोष उत्पन्न होते हैं फिर दोषों के कारण शरीर से चोरी परस्त्री गमन वचन से मिथ्या भाषण पराई निन्दा मन से परद्रोह पराये द्रव्य की इच्छा करता है इस पापरूप प्रवृत्ति से अधर्म होता है अच्छी प्रवृत्ति शरीर से दान दीनों की रक्षा वाणी से सत्य भाषण वेदादि सच्छास्त्रोंका पढना मन से जीवों पर दया श्रद्धा रूप है ऐसी प्रवृत्ति से धर्म होता है यहां गौतमजी ने प्रवृत्ति के साधन धर्म और अधर्म प्रवृत्ति पद से लिये हैं जैसे (अन्नं वै प्राणिनः प्राणाः) इस वाक्य में प्राण के साधक अन्न को प्राण पद से लिया है यह प्रवृत्ति निन्दित और श्रेष्ठ जन्म का कारण है शरीर इंद्रिय और बुद्धि के समूह रूप से प्रगट होने को जन्म कहते जन्म के होने से दुःख होता इन मिथ्या ज्ञान आदि दुःख पर्यन्त धर्मों के लगातार होने का नाम संसार है और जब तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान दूर हुआ तब दोष नष्ट होते दोषों के नाश से प्रवृत्ति नहीं होती और प्रवृत्ति के रुकजाने से जन्म नहीं होता बस लीजिये सब दुःख भागे इस दुःख के अत्यन्त अभाव को ही अपवर्ग निःश्रेयस और मोक्ष कहते हैं मिथ्या ज्ञान का स्वरूप पहिले दिखला दिया है इसके विपरीत ज्ञान को तत्वज्ञान कहते हैं अर्थात् जो वस्तु वास्तव में जैसी है उस को वैसी ही समझना ।

प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ॥३॥

प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द यह चार प्रमाण हैं इन के लक्षण ग्रन्थकार ने आप ही किये हैं फिर दुबारा लिखना व्यर्थ है हां प्रमाण पद का अर्थ लिखना आवश्यक है प्रमा नाम यथार्थ ज्ञानका है उस के करण को प्रमाण कहते हैं ।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥४॥

इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से जो ज्ञान होता उसे प्रत्यक्ष कहते हैं यद्यपि आत्मा और मन के संयोग को भी कारणता है क्योंकि उस के बिना ज्ञान नहीं होता तो भी उस के कारणत्व कहने की आवश्यकता नहीं है आत्ममनः संयोग ज्ञान मात्रका हेतु है यह लक्षण प्रत्यक्ष का है जिसका नाम न रख सकें यथार्थ और निश्चय रूप हो प्रत्यक्ष का यह ठीक लक्षण है गर्मी में जब सूर्य की किरण पृथ्वी की उष्णता से मिलकर बहती हुई दूरस्थ पुरुष के नेत्र से संयुक्त होतीहैं वहां इन्द्रिय और वस्तु के संयोग होने से जल का बोध होता है यह प्रत्यक्ष नहीं क्योंकि वह यथार्थ नहीं जो पदार्थ वास्तव में जैसा है उसी रूपसे जानना यथार्थ ज्ञान कहाता है दूर से कोई वस्तु देखकर यह धुआं है या धूल यह निश्चय नहीं कर सक्ता इस अनिश्चय रूप ज्ञान को भी प्रत्यक्ष नहीं कहते यह बात सूत्र में अव्यभिचारि व्यवसायात्मक इन पदों से कही गई है ।

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टञ्च ॥५॥

साध्य साधन के संबन्ध देखने से जो ज्ञान होता उसे अनुमान कहते हैं अनुमान से जो सिद्ध होता उसे साध्य और जिसके द्वारा साध्य जाना जाय उसे साधन कहते हैं इन्ही को लिंगी और लिंग इन नामों से भी पुकारते हैं जैसे धूम को जहां जहां देखा वहां वहां अग्नि को भी देखने से ज्ञात हुआ कि धूम बिन अग्नि के नहीं रहता इसी ज्ञान

को व्याप्ति ज्ञान कहते व्यापक के अधिकरण में व्याप्य का नियम से रहना व्याप्ति है अधिक देश में जो रहे वह व्यापक जैसे अग्नि जहां धूम रहता वहां अवश्य रहता और जहां धूम नहीं रहता वहां भी रहता जैसे तपाये हुए लोह के गोले में अग्नि रहता पर धूम नहीं इस लिये अग्नि व्यापक और धूम व्याप्य है क्योंकि अग्नि के अभाव में नहीं रहता अल्प देश में रहने से व्याप्य कहाता फिर कहीं केवल धूम के देखने से अग्नि का ज्ञान होता इसी को अनुमान कहते हैं यहां अग्नि साध्य और धूम को साधन समझना चाहिये ऐसे ही और भी उदाहरण समझलेना अनुमान तीन प्रकारका है पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट जहां कारण से कार्य का अनुमान होता है उसे पूर्ववत् कहते जैसे बादलों के उठने से होने वाली बर्षाका अनुमान क्योंकि बादलों का होना वर्षा का कारण और बर्षा कार्य है इस से उलटा अर्थात् कार्य से कारण के अनुमान को शेषवत् कहते जैसे नदी के चढ़ाव से प्रथम हुई वृष्टिका अनुमान नदी का चढना बर्षाका कार्य है अन्यत्र बार बार देखने से अप्रत्यक्ष दूसरे का जो अनुमान है उसे सामान्यतोदृष्ट कहते जैसे कोई पदार्थ विन क्रिया के एकस्थान से दूसरे स्थान पर जा नहीं सकता यह कई बार देखने से सिद्ध हो गया फिर सूर्य को एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान में देखकर उस की गति का अनुमान करना इस को सामान्यतोदृष्ट कहते हैं प्रत्यक्ष तो विद्यमान पदार्थका ही होताहै पर अनुमान विद्यमान और अविद्यमान दोनो ही का होता है क्योंकि पूर्व हुई और आगे होने वाली बस्तु का भी अनुमान होता है दोनों ही के उदाहरण ऊपर लिख चुके हैं ।

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ॥६॥

प्रसिद्ध पदार्थके सादृश्यसे साध्यके साधनको उपमान कहते हैं जैसेकिसी मनुष्य को गवयशब्द का अर्थ ज्ञात नथा उसने किसी जंगली मनुष्य से सुन लिया कि जैसी गाय होती वैसा ही गवय होता है फिर कभी बन में गवय देख पड़ा उसे देखते ही गाय के सदृश गवय होता है इस वाक्यका स्मरण हुआ स्मरण होते ही उसको गवय संज्ञा और यह गो सदृश पिंड उसका अर्थ है ऐसा ज्ञान

उत्पन्न होता है संज्ञा और उसके अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान होना उपमान प्रमाण का फल है गवय को भाषा में नील गाय कहते हैं ।

आप्तोप देशः शब्दः ॥७॥

आप्त के उपदेश को शब्द कहते हैं अर्थ के साक्षात्कार का नाम आप्ति है उससे जो प्रवृत्त होता है उसे आप्त कहते अर्थात् यथार्थ वक्ता उसीको प्रामाणिक कहते हैं इन्ही प्रमाणों से देव मनुष्य आदि कों के सब व्यवहार यथार्थ होते अन्यथा नहीं ।

स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ॥८॥

यह शब्द दो प्रकार का होता है एक दृष्टार्थ और दूसरा अदृष्टार्थ जिस शब्द का अर्थ इस लोक में देख पड़े जैसे घट मनुष्य आदि और जिस का अर्थ प्रत्यक्ष से प्रतीत न हो जैसे स्वर्ग ईश्वर इत्यादि वह अदृष्टार्थ है यह इसलिये कहा कि दृष्टार्थ शब्द ही प्रमाण है अर्थ के निश्चय होने से अदृष्टार्थ प्रमाण नहीं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि अर्थ के अनुमान होने से अदृष्टार्थक शब्द भी प्रमाण है प्रमाणों का बिभाग पूरा हुआ अब प्रमेयों का बिभाग लिखते हैं ।

आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोष प्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥९॥

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय अर्थ बुद्धि मन प्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव फल दुःख और अपवर्ग यह प्रमेय पदार्थ हैं आत्मा सब का साक्षी और भोक्ता है उसके भोग का स्थान शरीर है भोग के साधन इंद्रिय भोगने योग्य अर्थ भोग बुद्धि सब अर्थों का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं हो सकता इसलिये सर्व बिषय अंतःकरण को मन कहते हैं प्रवृत्ति और दोष के अर्थ दूसरे सूत्र की व्याख्या में लिख चुके हैं पुनर्जन्म को प्रेत्य भाव कहते साधन सहित सुख दुःख के भोग का नाम फल दुःख प्रसिद्ध है सब दुःख के नाश को अपवर्ग कहते हैं द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय यह भी प्रमेय कहाते हैं और फिर इनके भेद से प्रमेय

असंख्य होते हैं प्रमेय के तत्व ज्ञान से मोक्ष और मिथ्या ज्ञान से संसार होता है ।

आत्मा प्रत्यक्ष देख नहीं पड़ता तो क्या केवल प्रामाणिक लोगों के कहने मात्र से जाना जाता है नहीं अनुमान से भी आत्मा का ज्ञान होता है इसी का उपपादन अगले सूत्र से करते हैं ।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥१०॥

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञान आत्मा के लिङ्ग अर्थात् साधक हैं तथाहि जिस वस्तु के सम्बन्ध से आत्मा सुख पाता है उस वस्तु को देख कर लेने की इच्छा करता है यह इच्छा अनेक पदार्थों के देखने वाले किसी एक के दर्शन से होती है इसलिये आत्मा की साधक है अनेक अर्थों का अनुभव करनेवाला कोई एक है जिस अर्थ के संयोग से दुःख पाता उससे द्वेष करता जो वस्तु सुख का साधन है उसे देखने का प्रयत्नकरता है यह अनेक अर्थ के एक दृष्टाके विना नहीं हो सकता सुख और दुःख के स्मरण से यह उस के साधन को ग्रहण करता सुख और दुःख को पाता है जानने की इच्छा करता हुआ विचारता है कि यह क्या वस्तु है फिर विचार से ज्ञान लेता है कि यह अमुक वस्तु है यह ज्ञान आत्मा का लिंग है जो लोग आत्मा नहीं मानते केवल बुद्धि का भेद कहते उनके मत में इस नियम का विरोध आता है कि जो अनुभव करता उसी को स्मरण होताहै यह नहीं होता कि और के अनुभूत विषय को अन्यही स्मरण करै जो स्थिर एक आत्मा न हो तो जिस ज्ञान के विषय वस्तु हुआ वह तो नष्ट हो गया अब स्मरण करने वाला दूसरा ही होगा । तो उक्त दोष आजायगा इस प्रकार सिद्ध हुआ कि शरीरादिकों से भिन्न आत्मा है शरीर किस को कहते हैं ।

चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ॥ ११ ॥

क्रिया इन्द्रिय और अर्थ इनके आश्रय को शरीर कहते हैं अर्थ

का आश्रय किसे इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से सुख और दुःख का ज्ञान शरीर में होता है इसलिये शरीर अर्थ का आश्रय कहाता है ।

घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः॥१२॥

घ्राण रसन चक्षु त्वचा और कर्ण यह पांच इन्द्रिय पंचभूत से उत्पन्न हुये हैं इनके नाम काम के अनुसारही रखे गये हैं जैसे घ्राण यह शब्द घ्रा धातु से निकला है जिसका अर्थ सूंघना है गन्ध का ज्ञान जिसके द्वारा हो उसे घ्राण रसके ग्राहक को रसन रूप का ज्ञान जिससे हो उसे चक्षु जो स्पर्शका साधन उसे त्वचा और जिससे शब्द का ग्रहण हो उसे श्रोत्र कहते हैं ।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि ॥१३॥

पृथिवी जल अग्नि वायु और आकाश यह भूत कहाते और येही इंद्रियों के कारण हैं ।

गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः॥१४॥

गन्ध रस रूप स्पर्श और शब्द यह पांच पृथिवी आदि पंचभूतों के गुण और घ्राण आदि इंद्रियों के विषय हैं ।

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ॥ १५ ॥

बुद्धि उपलब्धिज्ञान ये सब समानार्थक अर्थात् पर्याय शब्द हैं ।

युगपज्ज्ञानानुपपत्तिर्मनसो लिंगम् ॥१६॥

घ्राण आदि इन्द्रियों का गंधादि अपने २ विषयों के साथ सम्बन्ध रहते भी एक समय अनेक ज्ञान उत्पन्न नहीं होते इस से अनुमान होता है कि उस उस इंद्रियका संबंधी अव्यापक कोई दूसरा सहकारी कारण है जिस के संयोग से ज्ञान होता और जिस के संयोग न रहने से ज्ञान नहीं होता इसी का नाम मन है मन के संयोग की अपेक्षा न करके केवल इंद्रिय और विषय के संयोग ही को ज्ञान का कारण माने तो एक संग अनेक ज्ञान होने चाहिये और यह अनुभव के विरुद्ध है दूसरे इंद्रिय जिन के कारण नहीं ऐसे स्मृति आदिकोँ का कोई कारण अवश्य माना चाहिये इससे भी मन सिद्ध होता है मन को अव्यापक इस लिये मानते कि एक काल में अनेक ज्ञान नहीं होते जो व्यापक

होता तो सब इंद्रियों के साथ संयोग होने से एक समय अनेक ज्ञान हो जाते और ऐसा होता नहीं इस लिये मन सूक्ष्म है ।

प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति ॥१७॥

वाणी बुद्धि और शरीर से कार्य के आरंभ को प्रवृत्ति कहते वह पुण्य और पाप दो प्रकार की होती यह दूसरे सूत्र में स्पष्ट है अच्छी प्रवृत्ति से पुण्य और दुष्ट प्रवृत्ति से पाप होता है सूत्र में बुद्धि पद से (बुध्यते अनेनेति) ज्ञान के साधन मन का ग्रहण किया है ।

प्रवर्तनालक्षणादोषाः ॥१८॥

प्रवृत्ति के कारण दोष हैं राग द्वेष और मोह को दोष कहते हैं यही तीनों पुण्य वा पाप में जीव की प्रवृत्ति कराते हैं॥

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥१९॥

मरकर फिर किसी शरीर में जन्म लेने को प्रेत्यभाव कहते हैं पुनरुत्पत्तिः यहां पुनः इस पद से अभ्यास सूचित किया अर्थात् वार वार पूर्व देहों का छोड़ना और दूसरों का ग्रहण करना यह जन्म मरण का अभ्यास अनादि है और अपवर्ग इस की अवधि है मुक्त जीव को फिर जन्म मरण का वन्धन नहीं होता ।

प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम् ॥२०॥

प्रवृत्ति और दोष से उत्पन्न अर्थ को फल कहते हैं अर्थात् सुख दुःख का अनुभव कर्मका फल सुख किंवा दुःख होता है ।

वाधनालक्षणं दुःखमिति ॥२१॥

वाधना पीड़ा उससे मिला अर्थात् अविभक्त होकर वर्त्तमान अर्थात जो प्रति कूल जान पड़े उसे दुःख कहते हैं यह जीव जन्म में दुःख देख कर संतप्त होता उससे वैराग्य और वैराग्य से मुक्ति पाता है ।

तदत्यंतविमोक्षोऽपवर्गः ॥२२ ॥

उस दुखदाई जन्म से अत्यन्त विमुक्ति का नाम अपवर्ग है अर्थात् ग्रहण किये जन्म की हानि और दूसरे जन्म का फिर न होना इसी अवस्था को जिस की अवधि नहीं मोक्ष के वेत्ता विद्वान अपवर्ग कहते हैं

प्रमेय का विभाग पूरा हुआ ।

अब संशय का लक्षण करते हैं ।

समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विषेषापेक्षो विमर्शः संशयः ॥२३॥

दूरसे सूखा वृक्ष देखकर उसमें स्थाणु और पुरुष के ऊचाई और मोटापन समान धर्म देखता हुआ पहिले जो विशेष धर्म देखे थे अर्थात् पुरुष में हाथ पांव और ठूंठे वृक्षमें घोसला आदि उनको जानने की इच्छा करता यह क्या वस्तु है स्थाणु है वा पुरुष इनमें से एक का भी निश्चय नहीं कर सक्ता इसी अनिश्चय रूप ज्ञान को सन्देह कहते हैं विप्रतिपत्ति अर्थात् परस्पर विरोधी पदार्थों के सहभाव देखने से भी सन्देह होता है जैसे एक शास्त्र कहता है कि आत्मा है दूसरा कहता कि नहीं सत्ता और असत्ता एकत्र रह नहीं सक्तीं और दोमें से एकका निश्चय कराने वाला कोई हेतु मिलता नहीं वहाँ तत्व का निश्चय न होना संशय है उपलब्धि की अव्यवस्था से भी संदेह होता है जैसे सत्यजल तालाव आदि में और असत्य किरणों में फिर कहीं प्राप्ति होने से यथार्थ के निश्चायक प्रमाण के नहोने से क्या सत् की उपलब्धि होती वा असत् की यह संदेह होता है ऐसे ही अनुपब्धिकी अव्यवस्था से भी संदेह होता है पहिले लक्षण में तुल्य अनेक धर्म ज्ञेयवस्तु में हैं और उपलब्धि अनुपलब्धि यह जानने वाले में हैं इतनी विशेषता है ।

यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत् प्रयोजनम् ॥२४॥

जिस अर्थ को पाने योग्य वा त्याग ने योग्य निश्चय करके उस की प्राप्ति वा त्यागका उपाय करता है उसको प्रयोजन कहते हैं ।

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टांतः ॥ २५ ॥

लौकिक साधारण लोग अर्थात् जो शास्त्र नहीं पढ़े और परीक्षक जो प्रमाणों से अर्थ की परीक्षा कर सक्ते इन दोनों के ज्ञानकी समता

अर्थात् जिस वस्तु को लौकिक जैसा समझते परीक्षक भी उसको वैसा ही जानते हैं उसका नाम दृष्टांत है दृष्टाँत के विरोध से प्रतिवादी निषेध योग्य होते और उसके समाधान से अपने पक्ष के स्थापन के योग्य होते हैं ।

तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धांतः ॥२६॥

परस्पर सम्बन्धयुक्त अर्थों के समूह के उपदेशको तंत्र कहते अर्थात शास्त्र उसके अर्थ की संस्थिति निर्णय किये गये अर्थ को सिद्धांत कहते हैं अधिकरणसिद्धांत और अभ्युपगम सिद्धांत के लक्षण आगे होंगे ।

सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थि त्यर्थान्तरभावात् ॥ २७ ॥

वह सिद्धांत चार प्रकारका है सर्वतन्त्र १ प्रतितन्त्र २ अधिकरण ३ और अभ्युपगम सिद्धांत ४

सर्वतंत्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्र-सिद्धान्तः ॥२८॥

सब तंत्रोंसे अविरुद्ध तंत्र में स्वीकार किया गया जो अर्थ उसे सर्वतंत्र सिद्धान्त कहते हैं अर्थात् जिसको सब शास्त्रकार मानें जैसे घ्राण आदि इंद्रिय गंध आदि उनके विषय पृथ्वी जल आदि भूत और प्रमाण से अर्थ का ग्रहण करना इनको सब शास्त्रकार मानते हैं ।

समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितंत्र-सिद्धांतः ॥२९॥

एक तंत्र में सिद्ध और दूसरे में असिद्ध उसको प्रतितंत्र सिद्धांत कहते हैं अर्थात् अपने अपने तंत्र का सिद्धांत जैसे सांख्य वाले मानते हैं कि जो असत् है वह कभी नहीं होसकता और सत् का अभाव भी कभी नहीं होता योगशास्त्रवेत्ता कहते हैं कि

भूतों की रचना में पुरुषों के कर्म निमित्त हैं दोष कर्मों के कारण असत् उत्पन्न होता और जो उत्पन्न होता है उसी का अभाव भी होता है इत्यादि ।

यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसि-द्धान्तः ॥३०॥

जिस अर्थ के सिद्ध होने से और अर्थ भी नियम से सिद्ध हों अर्थात उस अर्थ की सिद्धि के विना अन्य अर्थ भी सिद्ध न हो सकें उसे अधिकरणसिद्धान्त कहते हैं जैसे देह इन्द्रियों से भिन्न कोई जाननेवाला है देखने छूने से एक अर्थ के ज्ञान होने से यहां इन्द्रियों का अनेकपन उन के विषयों का नियत होना इन्द्रियां ज्ञाता के ज्ञान की साधक हैं इत्यादि विषयों की सिद्धि आपही होजाती है क्योंकि उन के माने विना उक्त अर्थ का सम्भव नहीं होता ।

अपरीक्षिताभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्यु-पगमसिद्धांतः ॥ ३१ ॥

परीक्षा के विना किसी वस्तु के अङ्गीकार करने से उस वस्तु की विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगमसिद्धान्त कहते हैं जैसे मान-लिया कि शब्द द्रव्य है परन्तु वह नित्य है वा अनित्य यह विशेष परीक्षा हुई यह सिद्धान्त अपनी बुद्धि की अधिकता और दूसरे की बुद्धि का अनादर सूचन करने के लिये काममें आता है अर्थात् हमारी ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि है कि तुम्हारे ऊटपटांग कहने को मान के भी हम तुम्हारी बात का खण्डन कर सकते हैं ।

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः॥३२॥

प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय और निगमन यह पाँच साधक वाक्य के अवयव अर्थात भाग कहाते हैं ।

साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ॥३३॥

साध्य के कथन को प्रतिज्ञा कहते हैं जैसे शब्द अनित्य है ।

उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः ॥ ३४॥

उदाहरण के साधर्म्य अर्थात् तुल्यता से साध्य के साधन को हेतु कहते हैं जैसे उत्पत्ति धर्मवान होने से जो उत्पत्ति धर्मवान है अर्थात् जो वस्तु उत्पन्न होता वह अनित्य देखा गया है तो क्या इतना ही हेतु का लक्षण है नहीं और भी है ।

तथा वैधर्म्यात् ॥ ३५ ॥

उदाहरण के वैधर्म्य से भी जो साध्य का साधक है उसे भी हेतु कहते हैं जैसे शब्द अनित्य है उत्पत्तिधर्मवान होने से जो उत्पत्ति धर्मवान नहीं वह नित्य है जैसे आत्मा यहां उदाहरण के विरोधी धर्म से शब्द का अनित्यत्व सिद्ध किया ।

साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टांत उदाहरणम् ॥ ३६ ॥

साध्य के साथ समान धर्मपन से साध्य का धर्म जिसमें हो ऐसे दृष्टान्त को उदाहरण कहते हैं जैसे जो उत्पन्न होता वह उत्पत्ति धर्मवान कहाता और उत्पन्न होनेके पीछे नष्ट भी होजाता है इसलिये अनित्य हुआ इस प्रकार उत्पत्ति धर्मवत्व साधन और अनित्यत्व साध्य हुआ यह दो धर्मों का साध्य साधनभाव एक वस्तु में निश्चित पाया जाता है उसको दृष्टान्त में देख शब्द में भी अनुमान करता है कि शब्दभी उत्पत्तिवाला है इसलिये अनित्य है घटकी नाईं यहां घट दृष्टांत है ।

तद्विपर्ययाद्वा बिपरीतम् ॥ ३७ ॥

साध्य के विपर्यय से बिपरीत अर्थात उलटा उदाहरण होता है जैसे शब्द अनित्य है उत्पत्ति धर्मवान होने से जो उत्पत्ति धर्मवान नहीं वह नित्य देखा गया जैसे आकाशादि यहां दृष्टान्त में उत्पत्ति धर्म के अभाव से नित्यत्व को देखकर शब्द में बिपरीत अनु-

मान करता है क्योंकि शब्द में उत्पत्तिरूप धर्म है उसका अभाव नहीं इसलिये अनित्य है ।

उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेतिवा साध्यस्योपनयः ॥३८॥

उदाहरणाधीन तथा इति अथवा न तथा इति इस रूप से साध्य के उपसंहार को उपनय कहते हैं उदाहरण दो प्रकार के होते हैं इसलिये उपनय भी दो प्रकार के सिद्धहुए जैसे घट आदि पदार्थ उत्पत्ति वाले होने से अनित्य देखे गये हैं वैसे शब्द भी उत्पत्तिवान है यह शब्द का उत्पत्ति धर्मवत्व का उपसंहार हुआ साध्य के विरुद्ध उदाहरण में आत्मादि पदार्थ उत्पत्तिवान न होने से नित्य देखने में आते हैं और शब्द तो वैसा नहीं है यह अनुत्पत्ति धर्म के निषेध से उत्पत्ति धर्मवत्व का उपसंहार हुआ यह उपसंहार का दो प्रकार से होना उदाहरण के दो प्रकार होने के अधीन है अर्थात् जहां साधर्म्य का दृष्टांत होगा वहां " तथा इति " ऐसा उपनय होगा और जहां वैधर्म्य का दृष्टांत होगा वहां " न तथा " इस प्रकारका उपनय जानना चाहिये ।

हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम् ॥ ३९ ॥

इसलिये उत्पत्ति धर्मवान होने से शब्द अनित्य है इसे निगमन कहते हैं प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण और उपनय यह एकत्र समर्थन किये जांय जिससे उसको निगमन जानना सुखसे बोध के लिये पूर्वोक्त सब अवयव फिरसे दिखलाये जाते हैं शब्द अनित्य है यह प्रतिज्ञा उत्पत्ति धर्मवान होने से यह हेतु उत्पत्ति धर्मवान घटादिद्रव्य अनित्य देखने में आते हैं यह उदाहरण ऐसा ही शब्दभी उत्पत्ति धर्मवान है इसको उपनय कहते हैं इसलिये उत्पत्ति धर्मवान होने से शब्द अनित्य सिद्ध हुआ इसका नाम निगमन है अवयव समूह रूप वाक्य में एकत्र होकर परस्पर सम्बन्धसे प्रमाण अर्थ को सिद्ध करते हैं ।

अविज्ञाततत्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः॥४०॥

नहीं जाना है तत्व जिसका ऐसे अर्थ में हेतु की उत्पत्ति से तत्वज्ञान के लिये जो बिचार है उसे तर्क कहते हैं जिस वस्तु का तत्वज्ञात नहीं पहिले उसके जानने की इच्छा होती है फिर जिज्ञासित वस्तु के विरोधी धर्मों को बिभाग से बिचारता है कि यह वस्तु इस प्रकार का है वा नहीं विचार किये दोधर्मों में से जिसका हेतु मिलजाता है उस धर्म को मान लेता है जैसे यह ज्ञाता जानने योग्य अर्थ को जानता है इसको जानूं यह जिज्ञासा हुई वह उत्पत्ति धर्मवान् वा अनुत्पत्ति धर्मवान् है यह विमर्श हुआ विचार करने से जिस धर्मके मानने का कारण पाता है उसको मान लेता है यह ज्ञाता उत्पत्तिधर्मवान् नहीं इसलिये अपने किये कर्म का फल भोगता है यदि उत्पत्ति वाला होता तो देहादि के साथ उत्पन्न होके फिर न होता और अपने किये कर्मों के फल का भागी भी न होता एक को अनेक शरीरों के संयोग और बियोग भी न बन सकते जिसका कारण नहीं पाता उसको नहीं मानता ऐसे बिचार को तर्क कहते हैं ।

विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः ॥ ४१ ॥

साधन और निषेध से विचार कर के अर्थ के निश्चय का नाम निर्णय है साधन और निषेध के आश्रय पक्ष प्रतिपक्ष कहाते हैं उन में से एक की निवृत्ति होने से दूसरे की स्थिति अवश्य होगी जिस की स्थिति उसका निश्चय होगा इसी को निर्णय कहते हैं निर्णय में यह कुछ नियम नहीं है कि पक्ष और प्रति पक्ष से विचार करके ही अर्थ के निश्चय को निर्णय कहते किंतु इंद्रिय और अर्थ के संयोग से उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष से भी वस्तु का निश्चय होता उसे भी निर्णय कहते हैं ।

बाद जल्प और वितंडा यह तीन प्रकार की कथा होती हैं उनमें बाद का लक्षण यह है ।

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः॥४२॥

एक स्थान में रहने वाले परस्पर विरोधी दो धर्म पक्ष प्रतिपक्ष कहाते हैं जैसे एक कहता है कि आत्मा है दूसरा कहता नहीं भिन्न भिन्न स्थान में रहने वाले परस्पर बिरोधी धर्म पक्ष प्रतिपक्षनहीं कहाते जैसे एक ने कहा आत्मा नित्य है दूसरा बोला बुद्धि अनित्य है पक्ष और प्रतिपक्ष के अंगीकार को बाद कहते हैं उसके प्रमाण तर्क साधनोपालम्भ सिद्धांताविरुद्ध और पञ्चावयवोपपन्न यह तीन बिशेषण हैं जिसमें अपने पक्ष का स्थापन प्रमाण से और प्रतिपक्ष का निषेध तर्क के द्वारा हों सिद्धांतका विरोधी नहो और पांच अवयवों से युक्त हो उसे बाद कहते हैं प्रतिज्ञा हेतु इत्यादि अवयव लक्षण सहित पीछे लिख दिये हैं ।

यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ॥४३॥

उक्त लक्षण युक्त छल जाति और निग्रहस्थान से साधन और निषेध जिसमें किये जांय उसको जल्प कहते हैं अर्थात् वाद और जल्प में इतना ही भेद है कि बाद में तो छलआदिसे साधन वा निषेध नहीं किये जाते पर जल्प में यह काम आते हैं जोभी छल आदि साक्षात् अपने पक्ष के साधक नहीं होते तोभी दूसरे के पक्ष का खण्डन करके अपने पक्ष की रक्षा करते हैं और निषेध करने में स्वतंत्र हैं छल जाति और निग्रहस्थान इनके लक्षण क्रम से आगे लिखे जांयगे ।

स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ॥४४॥

जिसमें प्रतिपक्ष का स्थापन नहीं ऐसे जल्प ही का नाम वितण्डा है जो एकत्र रहने वाले परस्पर विरोधी दो धर्म पक्ष और प्रतिपक्ष कहाते हैं उन में से एकका स्थापन वैतण्डिक नहीं करता केवल पर के पक्ष का खण्डन करता है अर्थात् जो दूसरा कहता है वह ठीक नहीं हमारा कोई पक्ष नहीं ऐसेको वैतण्डिक कहते हैं ।

सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीतकाला हेत्वाभासाः ॥४५॥

हेतु से देख पड़ें वस्तुतः हेतु लक्षण रहित हों उनको हेत्वाभास कहते हैं सव्यभिचार विरुद्ध प्रकरणसम साध्यसम और अतीतकाल

यह पांच हेत्वाभास कहाते हैं आगे इन पांचों के लक्षण क्रम से लिखे हैं

अनैकान्तिकः सव्यभिचारः ॥४६॥

एकत्र अव्यवस्था का नाम व्यभिचार है जो व्यभिचारसहित हो उसे सव्यभिचार कहते हैं जैसे किसी ने कहा कि शब्द नित्य है अस्पर्श वान् होने से स्पर्शवाला घट अनित्य देखा गया वैसा शब्द स्पर्श-वाला नहीं इसलिये शब्द नित्य है यहां दृष्टांत में स्पर्शवत्व और अ-नित्यत्व रूप धर्म साध्यसाधनभूत नहीं हैं क्योंकि परमाणु स्पर्श-वान् हैं पर अनित्य नहीं प्रत्युत नित्य हैं ऐसे ही यदि कहैं कि जो स्पर्शवान् नहीं वह नित्य है जैसे आत्मा तो यह भी नहीं कहसकते क्योंकि बुद्धि स्पर्श वाली नहीं पर नित्य नहीं है किंतु अनित्य है इस प्रकार दोनों दृष्टांतों में व्यभिचार आने से अस्पर्शवत्व हेतु स व्य-भिचार हुआ एक अंत में रहने वाले को ऐकांतिक कहते इससे विप-रीत को अनैकांतिक जानना चाहिये ।

सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ॥४७॥

जिस सिद्धांत को मान कर प्रवृत्त हो उसी सिद्धांत का जो विरोधी हेतु उसको विरुद्ध कहते हैं जैसे यहविकार व्यक्ति से रहित है नित्यत्व के निषेध से यह हेतु व्यक्ति से रहित भी विकार है इस अ-पने सिद्धांत का विरोधी है क्योंकि स्वरूप के लाभ को व्यक्ति कहते हैं उनसे रहित जो विकार है तो नित्यत्व का निषेध नहीं हो सकता व्यक्ति के बिना भी जो विकार का होना है इसी को नित्यत्व कहते हैं अर्थात् किसी पदार्थ की सत्ता और स्वरूप से न रहना यह दो वि-रोधी धर्म एकस्थान में नहीं रह सकते ।

यस्मात्प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः ॥४८॥

विचार के आश्रय अनिश्चित पक्ष और प्रतिपक्ष को प्रकरण क-हते हैं उस की चिन्ता संदेह से लेकर निर्णय तक परीक्षा जिस के कारण की गई वह निर्णय के लिये उपयुक्त दोनों पक्षों की समता से

प्रकरण का अतिक्रम नहीं करता इसलिये प्रकरणसम हुआ जैसे किसी ने कहा कि शब्द अनित्य है नित्य धर्म के ज्ञान न होने से यह हेतु प्रक-रणसम है इस से दो पक्षों में से किसी एक पक्ष का निर्णय नहीं हो सकता। क्योंकि जो शब्द में नित्यधर्म का ग्रहण होता तो प्रकरण ही नहीं बनता किंवा अनित्य धर्म का ज्ञान शब्द में होता तो भी प्रकरण सिद्ध न होता अर्थात् जो दो धर्मोंमें से एकका भी ज्ञान होता तो शब्द अनित्य है कि नित्य यह विचार ही क्यों प्रवृत्त होता ।

साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः॥४९॥

साध्य होने से साध्य से अविशेष होने के कारण साध्य सम कहाता है जैसे छाया द्रव्य है यह साध्य है गति वाली होने से यह हेतु है साधनेके योग्य होने से यह हेतु साध्य से विशेष नहीं इसलिये साध्य के सम हुआ अर्थात् छाया में जैसे द्रव्यत्व साध्य है वैसे ही गति भी साध्य है ।

कालात्ययापदिष्टः कालातीतः ॥५०॥

जिस अर्थ का एक देश काल के अत्यय अर्थात ध्वंस से युक्त हो उसे कालातीत कहते हैं जैसे शब्द नित्य है संयोग से प्रगटहोने से रूप की नांई जैसे प्रगट होने से पहिले और पीछे विद्यमान रूप घट और दीप के संयोग से प्रगट होता है वैसे ही शब्द भी नक्कारा और दंड के अथवा काठ और कुल्हाड़ी के संयोग से व्यक्त होता है इस-लिये शब्द नित्य है यह कालात्यय के आदेश से असत् हेतु है क्योंकि व्यंग्यरूप की व्यक्ति व्यंजक संयोग के काल का अतिक्रम नहीं करती दीप और घट के संयोग रहते रूप का ज्ञान होता है और संयोग के अभाव होने पर रूप का ज्ञान नहीं होता ऐसा शब्द में नहीं क्योंकि काठ और कुल्हाड़ी के संयोग निवृत्त होने पर भी दूरस्थित मनुष्य को शब्द का ज्ञान होता है विभाग काल में यह शब्द का ज्ञानसंयोग काल का उल्लंघन करता है इस प्रकार उदाहरण के साथ तुल्यता न होने से यह हेतु साधक नहीं किन्तु हेत्वाभास है ।

वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम् ॥ ५१ ॥

अर्थ को बदल कर वचन का विघात करना छल कहाता है इस का उदाहरण आगे लिखा है।

तत्रिविधं वाक्छलं सामान्यछलमुपचारच्छलञ्चेति ॥ ५२॥

यह छल तीन प्रकार का है वाक् छल सामान्यछल और उपचार छल ३ इन के उदाहरण क्रम से लिखते हैं।

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् ॥५३॥

साधारण रूप से उक्त अर्थ में वक्ता के आशय के विरुद्ध अन्य अर्थ की कल्पना को वाक् छल कहते हैं अर्थात् वाणी का छल जैसे किसी ने कहा कि यह बालक नवकंबल वान है यहां कहने वाले का आशय यह है कि इस बालक का कंबल नया है छलवादी वक्ता की इच्छा के विरुद्ध नव हैं कंबल जिस के ऐसा आपने कहा यह सर्वथा असंगत है क्योंकि इस लड़के के पास केवल एक कंबल है नव कहां से आए यहां नव कंबल यह समस्त पद है इस के विग्रह दो प्रकार से होते हैं एक तो नवीन है कंबल जिसका और दूसरा नव हैं कंबल जिसके नव शब्द के नवीन और नव संख्या यह दोनों अर्थ हैं इसलिये नव कंबल शब्द के समास में उक्त दोनों ही अर्थ होसक्ते हैं तब जैसा अर्थ इष्टहो वैसा ही निकल सक्ता है विशेष अर्थ का ज्ञान विग्रह में होता है समास में नहीं अनेकार्थ शब्द का साधारण से प्रयोग किया जाता है फिर जिस अर्थ का संभव हो उसी को लेना चाहिये न कि असंभव अर्थ को ले दोष देना यह वाणी से छल होने से वाक्छल कहाता है।

सम्भवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसंभूतार्थकल्पना सामान्यछलम् ॥ ५४ ॥

संभावित अर्थको अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ की कल्पना को सामान्य छल कहते हैं जैसे किसी ने कहा कि यह ब्राह्मण

विद्याचरण संपन्न है इस वचन का खण्डन अर्थ विकल्प का ग्रहण असंभूत अर्थ की कल्पना से किया जाता है जो ब्राह्मणमें विद्याचरण संपत्ति सम्भावित है तो व्रात्य में भी हो व्रात्य भी ब्राह्मण है वह भी विद्याचरण संपन्न हो जो वक्ता को इष्ट अर्थ प्राप्त हो और उसका अतिक्रम भी करे उसको अति सामान्य कहते हैं जैसे ब्राह्मणत्व कहीं विद्याचरण संपत्ति को प्राप्त होता और कहीं उसका त्याग करता है सामान्य निमित्तक जो छल उसे सामान्य छल कहते हैं इसका खण्डन यह है कि यह वाक्य प्रशंसार्थक है इसलिये इसमें असंभूत अर्थ की कल्पना नहीं होसक्ती ब्राह्मण संपत्ति का विषय है उस का हेतु नहीं क्योंकि यहां हेतु की विवक्षा नहीं अर्थात् ब्राह्मणत्व होनेसे विद्याचरण सम्पन्न है ऐसा इष्ट नहीं।

धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचारच्छलम् ॥ ५५ ॥

यथार्थ प्रयोग करना अभिधान का धर्म है अन्यत्र इष्ट का और स्थान में प्रयोग करना धर्म का विकल्प कहाता है उस के उच्चारण से अर्थ के सद्भाव का निषेध उपचार छल कहाता है जैसे किसीने कहा मचान चिल्ला रहे हैं उसका दूसरा खण्डन करता है कि मचानों पर बैठे हुये पुरुष चिल्ला रहे हैं मचान नहीं चिल्लाते सहचार आदि कारणों से जो तद्रूप नहीं उसमें तद्रूप के कथन का नाम उपचार है तद्विषयक छल को उपचार छल कहते हैं इसका समाधान यह है कि प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध प्रयोग में वक्ता का जैसा आशय रहे वैसी ही अनुमति वा निषेध होंगे अपनी इच्छा के अनुसार नहीं क्योंकि प्रधान और अप्रधान अर्थ के अभिप्राय से दोनों ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग लोक में प्रसिद्ध है इसलिये जब वक्ता प्रधान के अभिप्राय से प्रयोग करे तब उसी के स्वीकार और निषेध होने चाहिये जहां वक्ता अप्रधान के आशय से प्रयोग करता है और दूसरा प्रधान के अभिप्राय से अपनी इच्छा के अनुसार खण्डन करता है यह उचित नहीं जैसे उक्त उदाहरण में मचान इस शब्द के दो अर्थ हैं एक तो किसान लोग

खेती की रखवाली के लिये लकड़ियों के ऊंचे बैठक बना लेते हैं उन्हीं को मचान कहते यही अर्थ प्रधान वा मुख्य कहाता और मचानोंपर बैठे हुए मनुष्य भी उक्त शब्द के अर्थ हैं पर यह अर्थ अप्रधान वा गौण कहा जाता है अब बिचारना चाहिये जिसने मचान चिल्लाते हैं यह प्रयोग किया तो उसका आशय अप्रधान विषयक है तब प्रधान अर्थ को लेकर उसका खण्डन करना छल ही कहावेगा ।

वाक्छलमेवोपचारच्छलं तदविशेषात् ॥ ५६ ॥

वाक्छल से उपचार छल पृथक् नहीं क्योंकि दूसरे अर्थ की कल्पना उपचार छल में भी समान है अर्थात् जैसे वाक्छल में अर्थान्तर की कल्पना करके खण्डन किया था वैसे ही उपचार छल में भी किया फिर भेद क्या हुआ ।

न तदर्थान्तरभावात् ॥ ५७ ॥

वाक्छल ही उपचार छल नहीं होसकता क्योंकि अर्थान्तर की कल्पना से दूसरे अर्थ के सद्भाव की कल्पना अन्य अर्थ की सत्ता का निषेध होता है उपचारछलमें और वाक्छलमें ऐसा नहीं होता अर्थात् उपचारछल में अर्थ बदल कर एक अर्थ का सर्वथा खण्डन कर देते जैसे उक्त उदाहरण में मचान शब्द का अर्थ बदल कर पहिले अर्थ का खण्डन कर दिया वाक्छल में नव शब्द के किसी अर्थ का खण्डन नहीं किया यही इन में परस्पर भेद है ।

अविशेषे वा किञ्चित्साधर्म्यादेकछलप्रसंगः ॥५८॥

विशेषता न मानोंगे तो कुछ तुल्यता मान कर एकही प्रकार का छल रहजायगा यदि यह हेतु किञ्चित् समानता से छलके त्रिविध होने का खण्डन करेगा तो द्विविध होने का खण्डन अवश्य ही करेगा क्योंकि कुछ तुल्यता दोनों भी विद्यमान ही है और जो कहो कि किञ्चित् समानता से द्विविधपन की निवृत्ति नहीं होती तो त्रिविधत्व की भी निवृत्ति क्योंकर होवेगी ।

साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः॥५९॥

साधर्म्य और वैधर्म्य से जो प्रत्यवस्थान अर्थात् खण्डन इसको जाति कहते हैं ।

विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ॥॥६०॥

विपरीत अथवा निंदित प्रतिपत्ति को विप्रतिपत्ति कहतेहैं और दूसरे से सिद्ध किये पक्षका खंडन न करना अथवा अपने पक्षपर दिये दोष का समाधान न करना अप्रतिपत्ति है प्रतिपत्ति शब्दका अर्थ प्रवृत्ति है यह दोनों निग्रहस्थान अर्थात् पराजय के स्थान हैं विप्रतिपत्ति वा अप्रतिपत्ति करने से पराजय होता है ।

तद्विकल्पाज्जातिनिग्रहस्थानबहुत्वम् ॥६१॥

साधार्म्य वैधर्म्य से प्रत्यवस्थान के विकल्प से जाति का बहुत्व और विप्रतिपत्ति तथा अप्रतिपत्ति के विकल्प से निग्रहस्थान का बहुत्व होता है अनेक प्रकार की कल्पना को विकल्प कहते हैं जैसे अननुभाषण अर्थात् मौन होजाना अज्ञान न समझना अप्रतिभा उत्तर का न फुरना मतानुज्ञा दूसरे के मत का अंगीकार अपने ऊपर दिये दोष की उपेक्षा करनी यह सब अप्रति पत्ति है और शेषको विप्रतिपत्ति जानना चाहिये यह प्रमाणादि सोलह पदार्थोंका लक्षण सहित विभाग पूरा हुआ आगे दूसरे अध्याय में इनकी परीक्षा कीजायगी ।

इति मिश्र शालग्राम शास्त्रिविरचितायां न्यायतत्वबोधिन्यां प्रथमोऽध्यायः ।

सन्देह उठा कर पक्ष और प्रतिपक्ष से अर्थ के निश्चय करने को परीक्षा कहते हैं इसलिये सबका उपयोगी होने से पहिले सन्देह की परीक्षा की जाती है ।

समानेकधर्माध्यवसायादन्यतरधर्माध्यवसायाद्वा न संशयः॥१॥

समान और अनेक धर्मों के अथवा दो में से एक धर्म के ज्ञान से सन्देह नहीं हो सकता इस सूत्र का आशय भाष्यकार ने दो तीन प्रकार से लगाया है एक तो यह कि धर्म के ज्ञानसे धर्मी में सन्देह नहीं बनता क्योंकि धर्म और धर्मी भिन्न पदार्थ हैं रूप के ज्ञान से स्पर्श में कभी सन्देह नहीं होसकता दूसरा अर्थ कि अवधारण से अनव धारण रूप सन्देह कैसे उत्पन्न होसकेगा क्योंकि कारण और कार्य समान रूप होते हैं इसलिये निश्चय रूप कारण से अनिश्चयरूप सन्देह नहीं हो सकता ऐसे ही दो में से एक धर्म के निश्चय से भी सन्देह नहीं बनता उससे तो एक का निश्चय ही होजायगा ।

विप्रतिपत्त्यव्यवस्थाध्यवसायाच्च॥२॥

केवल विप्रतिपत्ति और केवल अव्यवस्था से सन्देह नहीं होसकता किन्तु विप्रतिपत्तिका जिसको ज्ञान हुआ उसको सन्देह होगा ऐसे ही अव्यवस्था में भी जानलेना चाहिये ।

विप्रतिपत्तौ च संप्रतिपत्तेः॥३॥

जिस विप्रतिपत्तिको आप सन्देह का हेतु मानते हो वह संप्रतिपत्ति है क्योंकि वह दो के विरुद्ध धर्म विषयक है वहां जो विप्रतिपत्तिसे संदेह कहोगे तो संप्रतिपत्ति से भी सन्देह होना चाहिये अर्थात् केवल विप्रतिपत्ति संदेह का कारण नहीं हो सकती ।

अव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वाच्चाव्यवस्थायः ॥४॥

अव्यवस्था संदेह नहीं हो सकती क्योंकि अव्यवस्था आत्मा में व्यवस्थित है व्यवस्थित होने से संदेह हो नहीं सकता किसी विशेष

विषय में स्थिति को व्यवस्था और उससे जो विपरीत उसे अव्यवस्था कहते हैं ।

तथात्यन्तसंशयस्तद्धर्मसातत्योपपत्तेः ॥५॥

ऐसा होने से अत्यन्त संदेह होजायगा क्योंकि उन धर्मोंकी उपपत्ति सदा विद्यमान है जिस प्रकार से समान धर्मों की उपपत्ति से आप संदेह मानते हैं उसी से अत्यन्त संशय की आपत्ति आजाती है समान धर्मों की उपपत्तिका अभाव न होने से संदेह की निवृत्ति कभी न होगी ।

अब इन सब पूर्वपक्षों का समाधान लिखते हैं ।

यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात्संशये नासंशयो नात्यंतसंशयो वा ॥६॥

विशेष धर्माकांक्षा युक्त उक्त अध्यवसायसे ही संदेहके स्वीकारसे संदेह का अभाव वा अत्यंत संदेह नहीं होसक्ता जैसे दो पदार्थ मैंने पहिले देखे थे उनके समान धर्म देखता हूं विशेष धर्म ज्ञात नहीं होता किस प्रकार विशेष धर्म को जानूं जिससे दोमें से एक का निश्चय करूं और यह संदेह समान धर्मों के ज्ञान रहते केवल धर्म और धर्मी के ज्ञान से निवृत्त नहीं होसक्ता इससे अनेक धर्मों के अध्यवसाय से संदेह नहीं होता इसका समाधान किया और जो कहा था कि दूसरे अर्थ के निश्चय से और अर्थ में संदेह नहीं होसक्ता यह उससे कहना चाहिये कि जो केवल अर्थान्तर के अध्यवसाय को संदेह का कारण मानता हो जो यह कहा था कि कार्य कारण की समान रूपता नहीं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि कार्य और कारण की समानरूपता यही है कि कारण के होने से कार्य का होना तथा कारण के अभाव से कार्यका न होना यह संशय के कारण और उसके कार्य संशय में विद्यमानही है और जो कहा था कि विप्रतिपत्ति की अव्यवस्था के अध्यवसाय से संदेह नहीं होसक्ता यह भी ठीक नहीं जैसे एक कहता है कि आत्मा है और दूसरा कहता नहीं इन दो बातों से मध्यस्थ को संदेह होता है कि दो भिन्न भिन्न बातों से परस्पर विरोधी अर्थ जान पड़ते हैं और विशेष धर्म जानता नहीं कि जिसके

द्वारा दो मेंसे एक का निश्चय करूं एक वस्तु में परस्पर विरोधी दो वादों का नाम विप्रतिपत्ति है इसी प्रकार उपलब्धि आदि संदेह में भी समाधान समझ लेना चाहिये और जो यह दोष दिया था कि उस धर्म की सर्वदा उपपत्ति होने से अत्यंत संदेह होजायगा अर्थात् संदेह की निवृत्त कभी न होगी यह कहना तब ठीक होता जो समान धर्म के अध्यवसाय को संदेह का कारण कहते हमतो विशेष धर्म की स्मृति सहित समान धर्म के अध्यवसायको संदेहका कारण कहते हैं जब विशेषधर्मका ज्ञानहोजायगा तबसंदेहकी निवृत्ति अवश्यहोवेहीगी ।

यत्र संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसंगः ॥७॥

जहां जहां शास्त्र अथवा वादमें संदेह करके परीक्षा कीजाय वहां यदिकोई संदेहका निषेधकरे तो इसी रीतिसे समाधान करना चाहिये इसीलिये संदेहकीपरीक्षा पहिले कीगई कि सब परीक्षाओंकी यह उपयोगी है ।

अब प्रमाणोंकी परीक्षा करतेहैं—

प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ॥८॥

प्रत्यक्षादि प्रमाण नहीं होसक्ते तीन कालमें असिद्ध होनेसे अर्थात् पहिले पीछे और साथमें इनकाहोना असिद्ध है यह साधारण वचनहै इसके अर्थकी विवेचना अगले सूत्रोंमें कीहै ।

पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात्प्रत्यक्षोत्पत्तिः ॥९॥

गंध आदि विषयक ज्ञान प्रत्यक्षहै यदि वह पहिलेहीसे है गंध आदि विषयोंकी सिद्धि पीछेसे होती है तो इन्द्रिय और अर्थ के मेलसे प्रत्यक्षकी उत्पत्ति नहीं हुई ।

पश्चात्सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ॥१०॥

पीछेसे सिद्धि मानोगे तो प्रमाणोंसे प्रमेयकी सिद्धि नहीं हुई क्योंकि प्रमाणसे सिद्ध अर्थ प्रमेय कहाताहै ।

युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वाभावो बुद्धीनाम् ॥११॥

यदि कहो कि प्रमाण और प्रमेयकी सिद्धि एकही समय होतीहै तो ज्ञानोंके प्रत्यर्थ नियत होनेसे क्रमवृत्तित्वका अभाव होजायगा और यह ठीक नहीं क्योंकि एक साथ ज्ञानोंका न होना मनका लिंगहै अर्थात् एक कालमें अनेक ज्ञान नहीं होसकते इसलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका प्रमाणपन सिद्ध नहींहोता इन शंकाओंका समाधान यद्यपि सूत्रकारने ही कियाहै तो भी वात्स्यायन मुनिने इसी सूत्रपर समाधान भी लिखाहै तदनुसार कुछ संक्षेपसे हमभी लिखतेहैं ज्ञानका कारण और ज्ञानका विषय इनदोनोंका पूर्व पर और साथ होनेका नियम नहींहै इसलिये जैसा जहां देखने में आता वैसा विभाग कियाजाताहै कहीं ज्ञानकाकारण पहिले और पीछे ज्ञानका बिषय जैसे सूर्यका प्रकाश उत्पन्न होनेवाले पदार्थों से प्रथम होताहै कहीं ज्ञानका विषय पहले और उसका कारण पीछे होता जैसे पहिलेसे रक्खेहुए पदार्थोंका दीप और कहीं ज्ञानका कारण और उसका विषय साथही रहतेहैं जैसे धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान इससे सिद्ध हुआ कि जो ज्ञानका कारण वह प्रमाण और जो ज्ञानका विषय वह प्रमेय कहाताहै इसप्रकार प्रमाण और प्रमेयका प्रथम पीछे और साथहोना अनियतहै इसलिये जहां जैसा सम्भव हो वैसा विभाग कर कहना उचितहै ।

त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥१२॥

तीनकालमें असिद्ध होनेसे प्रतिषेधकी उपपत्ति नहीं होसक्ती यदि पहले प्रतिषेधकी सिद्धि कहोतो प्रतिषेध योग्य विषय न रहनेसे किसका निषेधकरोगे पीछे सिद्धि मानोगे तो प्रतिषेधके न होनेसे प्रतिषेध्ययोग्यकी असिद्धि होगी और जो एकसाथ सिद्धि मानोगे तो प्रतिषेध्यकी सिद्धिमानलेनेसे निषेध व्यर्थ हुआ प्रतिषेध लक्षण वाक्यके अनुपपन्न होनेसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका प्रमाणत्व सिद्ध हुआ ।

सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधानुपपत्तिः ॥१३॥

और सब प्रमाणोंके खण्डन करनेसे निषेध सिद्ध नहीं होसक्ता अर्थात् जब सब प्रमाणोंका निषेध कर चुके तब प्रतिषेध करनेमें प्रमाण कहांसे लाओगे और बिन प्रमाण कोई बात सिद्ध नहीं होसक्ती इसलिये सब प्रमाणोंका निषेध नहीं होसक्ता ।

तत्प्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ॥१४॥

यदि प्रतिषेधमें प्रमाण मानोगे तो सब प्रमाणोंका प्रतिषेध नहीं होसक्ता ।

त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः॥१५॥

तीन कालका निषेध नहीं होसक्ता जैसे शब्द के सुननेसे वाद्यकी सिद्धि होती अर्थात् शब्दके सुननेसे पहिलेसे सिद्ध वाद्यका ज्ञान होताहै छिपेहुए वीन वांसुरी आदि वाद्योंका शब्दसे अनुमान होताहै कि वीन वांसुरी आदि बजाये जातेहैं अर्थात् प्रमाण और प्रमेयका समकाल होनेका कुछ नियम नहीं है कहीं प्रमाण पहिले कहीं पीछे और कहीं साथही रहते हैं ।

प्रमेयता च तुलाप्रामाण्यवत् ॥१६॥

जिससे गुरुताका ज्ञान हो उसे तुला कहते अर्थात् तराजू वह प्रमाण और प्रमेय उभय धर्मयुक्त होनेसे प्रमाण और प्रमेयभी कही जाती है सुवर्णादि द्रव्योंका भार उससे जाना जाताहै इसलिये प्रमाण और उस का बोझ जब दूसरी वस्तु से ज्ञात हो तब वही प्रमेय होसक्ती है आत्मा ज्ञानके विषय होनेसे प्रमेयोंमें पढ़ागया और जानने में स्वतंत्र होनेसे प्रमाता भी कहाता है इसी प्रकार बुद्धि ज्ञानकी कारण होनेसे प्रमाण और ज्ञानविषय होनेसे प्रमेयभी होसक्ती है अर्थात् एक ही पदार्थ प्रमाण तथा प्रमेय धर्म भेदसे होसक्ता है ।

प्रमाणतः सिद्धेः प्रमाणानां प्रमाणान्तरसिद्धिप्रसंगः ॥१७॥

प्रमाण से प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी सिद्धि यदि मानोगे तो दूसरे प्रमाणों की सिद्धि माननी पड़ेगी अर्थात् अनवस्था दोष आजायगा जैसे कोई पूछे कि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी सिद्धि यदि अन्य प्रमाणोंसे हुई तो उन प्रमाणों की सिद्धि किससे हुई यदि उसकी सिद्धि दूसरेसे हुईतो उस की सिद्धि किस से इसी प्रकार कहते कहते थकजाओगे प्रलय तक अंत न होगा ।

तद्विनिवृत्तेर्वा प्रमाणान्तरसिद्धिवत् प्रमेयसिद्धिः ॥१८॥

यदि प्रत्यक्षादि प्रमाणों के ज्ञान के लिये प्रमाणांतर न मानोगे तो आत्मा के ज्ञान के लिये भी प्रमाण माननेकी आवश्यकता न रहेगी दूसरे प्रमाण की सिद्धि की भांति प्रमेयकी सिद्धि भी होजावेगी इस प्रकार सब प्रमाणों का लोप होजायगा इस शंका का समाधान अगले सूत्र से होगा ।

न प्रदीपप्रकाशवत् तत्सिद्धेः ॥१९॥

ऐसा मत कहो दीप प्रकाश की नाईं उसकी सिद्धि होजायगी अर्थात् जैसे दीपका प्रकाश स्वयं दर्शन योग्य होकर और दृश्य पदार्थों के दर्शन का कारण होने से दृश्य और दर्शन का कारण कहा जाता है वैसे ही प्रमेय होकर भी किसी वस्तु के दर्शन का हेतु होने से प्रमाण भी हो सकता है अर्थात् एक ही वस्तु प्रमाण और प्रमेय के नाम से अवस्था भेद के कारण व्यवहृत होसकता है इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्षादिकों की सिद्धि प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से होती है न कि दूसरे प्रमाणों से और नविन प्रमाण ही के यह सिद्धांत है इस प्रकार साधारण रूप से प्रमाणों की परीक्षा करके अब विशेष रूपसे एकएक की परीक्षा की जाती है ।

प्रत्यक्षलक्षणानुपपत्तिरसमग्रवचनात् ॥२०॥

प्रत्यक्षका लक्षण सिद्ध नहीं होता क्योंकि पूर्ण रूप से नहीं कहा गया आत्मा और मन का संयोग भी प्रत्यक्ष का कारण है मन के संयोग को अपेक्षा न कर के केवल इंद्रिय और अर्थ के संयोग को कारण मानोंगे तो एक सङ्ग कई ज्ञान होजायंगे इसलिये मन के संयोग को भी प्रत्यक्ष का कारण मानना चाहिये ।

नात्ममनसोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः॥२१॥

आत्मा और मन के संयोग विना प्रत्यक्ष की उत्पत्ति नहीं होती है ।

दिग्देशकालाकाशेष्वेवंप्रसंगः ॥२२॥

इसी प्रकार दिशा देश काल और आकाश में भी प्रसङ्ग प्राप्त हुआ क्योंकि दिशा आदि के बर्त्तमान रहने से ज्ञान होता है इसलिये यह भी कारण कहावेंगे क्योंकि देशादिकों की समीपता बचा नहीं सकते अर्थात् जहां ज्ञान होता है वहां यह अवश्य रहते ही हैं फिर इन को कारण क्यों नहीं मानना ।

ज्ञानलिङ्गत्वादात्मनो नानवरोधः ॥२३॥

ज्ञान आत्मा का लिङ्ग है क्योंकि आत्मा का गुण है असंयुक्त द्रव्य में संयोग जन्य गुण की उत्पत्ति हो नहीं सक्ती इसलिये इसका त्याग नहीं है ।

तदयौगपद्यलिङ्गत्वाच्च न मनसः ॥२४॥

एक काल में अनेक ज्ञानों का न होना मन का लिङ्ग है जब यह कहदिया तो सिद्ध होगया कि मन के संयोग की अपेक्षा रखने वाला इंद्रिय और अर्थ का संयोग ज्ञान का कारण है इंद्रिय और अर्थ का संयोग प्रत्यक्ष का मुख्य कारण है आत्मा और मन का संयोग प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द इन सबों का ही कारण है इसलिये पृथक् करके कहा और एक बात यह भी है कि शयन अथवा दुचित्तेपन की अवस्था में इंद्रिय और अर्थ का संयोग रहता है आत्मा और मन का संयोग नहीं अर्थात् जब आत्मा समय नियत करके सोता है तब चिन्ता के कारण नियत समय पर जागता है और जब प्रबल शब्द और स्पर्श जगाने के कारण होंगे तब सोते पुरुष को इंद्रिय और अर्थ के संयोग से जागना होगा वहां आत्मा और मन के संयोग की मुख्यता नहीं किन्तु इंद्रिय और अर्थ का संयोग ही मुख्य कारण है क्योंकि उस समय आत्मा ज्ञान की इच्छा से मन को प्रेरणा नहीं करता ऐसे ही जब इसका मन किसी दूसरे पदार्थ में लगा रहता है और संकल्प होने से अन्य विषयों की जानने की इच्छा करता है तब प्रयत्न से प्रेरणा कर मन को इंद्रिय के साथ मिलाता है और उस विषय को जानता है जब इसकी इच्छा अन्य विषय के जानने की नहीं रहती और एक ही विषय में मन लगा

रहता है तब बाहर विषयों के प्रबल संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उस समय इंद्रिय और अर्थ के संयोग की प्रधानता है क्योंकि इस काल में आत्मा ज्ञान की इच्छा न होने से मन को प्रेरणा नहीं करता प्रधान होने के कारण इंद्रिय और अर्थ के संयोग का ग्रहण करना चाहिये गौण होने से आत्मा और मन के संयोग का ग्रहण करना उचित नहीं है ।

इंद्रिय और अर्थ का संयोग प्रत्यक्षज्ञान का मुख्य कारण है इस में दूसरा भी हेतु है ।

तैश्चापदेशो ज्ञानविशेषाणाम् ॥२५॥

इंद्रिय और अर्थों के द्वारा विशेष ज्ञानोंका व्यवहार किया जाता है जैसे नाक से सूंघता आंख से देखता और जीभ से स्वाद लेता है गन्धज्ञान रूपज्ञान और रस ज्ञान इत्यादि इसलिये इंद्रिय और अर्थ के संयोग की मुख्यता है ।

व्याहतत्वादहेतुः ॥२६॥

यह जो कहा था कि इंद्रिय और अर्थ का संयोग मुख्य है और आत्मा मन का संयोग प्रधान नहीं क्योंकि सोने की या किसी विषय में जब मन अत्यन्त आसक्त हो जाता है ऐसी अवस्था में प्रबल इंद्रिय अर्थ के संयोग से एकाएक ज्ञान होजाता है वहाँ आत्मा जानने की इच्छा से मन को प्रेरणा नहीं करता तो भी ज्ञान होहीजाता है यहबाधित होने से हेतु नहीं हो सकता यदि किसी स्थल में आत्मा और मन के संयोग को ज्ञान का कारण न मानोगे तो एकसाथ कई ज्ञानों के न होने से जो मन की सिद्धि कही थी वह बाधित हो जायगी इसलिये आत्मा और मन का संयोग सब ज्ञानों का कारण है यह अवश्य मानना ही पड़ेगा तो फिर भी आत्मा और मन के संयोग का ग्रहण प्रत्यक्ष के लक्षण में करना चाहिये ।

नार्थविशेषप्राबल्यात् ॥२७॥

यह हेतु बाधित नहीं है क्योंकि आत्मा और मन के संयोग की कारणता का व्यभिचार नहीं है केवल इन्द्रिय और अर्थ के संयोग की प्रधानता ली गई है किसी विशेष अर्थ की प्रबलता से सोते और

मन के विषयान्तर में अति आसक्त समय में एक समय ज्ञान की उत्पत्ति होजाती है ।

प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशग्रहणादुपलब्धेः ॥२८॥

इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से वृक्ष इस आकार का जो प्रत्यक्षज्ञान होता है यह अनुमान ही है क्योंकि एक अवयव के ज्ञान से वृक्ष का बोध होता है जैसे धूम के देखने से अग्निका अनुमान होता है वैसे ही वृक्ष के आगे के भाग को देखकर दूसरे भाग का अनुमान होता है क्योंकि अवयवसमुदायरूप वृक्ष है इसलिये सामने के भाग देखने से शेष भागों का जो ज्ञान होता है वह अनुमान ही है ।

न प्रत्यक्षेण यावत्तावदप्युपलम्भात् ॥२९॥

प्रत्यक्ष अनुमान नहीं है क्योंकि जितने देश का ज्ञान होता है वह प्रत्यक्षही से हुआ है ज्ञान निर्विषय नहीं होता जितना अर्थ ज्ञानका विषयहै वह सब प्रत्यक्षका विषय है अन्यप्रकार से भी प्रत्यक्ष अनुमान नहीं होसक्ता अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक होता है परस्पर संबंध युक्त अग्नि और धूमके देखने वालेको धूमके प्रत्यक्षसे अग्निका अनुमान होता है यह जो वृक्षका ज्ञानहुआ वह इंद्रिय और अर्थके संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण प्रत्यक्षही है अनुमान नहीं ।

न चैकदेशोपलब्धिरवयविसद्भावात् ॥३०॥

केवल एक देशहीका ज्ञान नहीं होता किंतु उसके सहचारी अवयवीका भी बोध होताहै क्योंकि अवयवीभी विद्यमानहै अवयवोंसे भिन्न अवयवी मानागया है उसीका प्रत्यक्षहोता है ।

साध्यत्वादवयविनि सन्देहः ॥३१॥

जो कहाथा कि अवयवी भी विद्यमानहै उसका प्रत्यक्ष होताहै यह ठीक नहीं क्योंकि साध्य होनेसे अवयवी में संदेहहै अर्थात् जब तक अवयवोंसे भिन्न अवयवी सिद्ध न होजाय तबतक यह कहना कि अवयवीका प्रत्यक्ष होताहै यह सर्वथा असंभव है ।

सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः ॥३२॥

जो अवयवी न मानोगे तो द्रव्यगुण क्रिया जाति आदि सब पदार्थों का ज्ञान कैसे होगा यदि कहोकि परमाणुओं का ज्ञान होता है तो यह ठीक नहीं क्योंकि परमाणु अतींद्रियवस्तुहैं अर्थात् सूक्ष्म होने से इंद्रिय के विषय नहीं होसक्ते और भिन्न अवयवी मानतेही नहीं और द्रव्यादिकों का ज्ञान होताहै फिर ज्ञान बिन आधार के होता ही नहीं यह घड़ा काला बड़ा एक और मिट्टीका है ऐसा ज्ञान होता इसलिये पृथक अवयवी अवश्य मानना चाहिये ।

धारणाकर्षणोपपत्तेश्च ॥३३॥

धारण और आकर्षण की उपपत्ति से भी अवयवीकी सिद्धि होती है अर्थात एक अवयके धारण करनेसे सबका धारण होजाता और एक देशके खींचनेसे सब खिच जाता है जो अवयवी भिन्न नहीं मानता उससे पूछना चाहिये कि ये वस्तु एक है यह ज्ञान अभिन्न अर्थको ग्रहण करता अथवा अनेक अर्थको यदि कहो कि अभिन्न अर्थको तो अर्थान्तरके माननेसे अवयवी सिद्ध हुआ यदि कहो कि अनेक अर्थोंका ग्रहण करता तो यह कहना बाधित है क्योंकि अनेकमें एकबुद्धि कैसे हो सक्ती है इस लिये अवयवी अवश्य मानना चाहिये ।

सेनावनवद्ग्रहणमितिचेन्नातीन्द्रियत्वादणूनाम् ॥३४॥

जैसे सेनाके अवयव और वनके अवयवों में दूरसे भेदके ज्ञान न होनेसे एकहै ऐसा ज्ञान होताहै ऐसेही परमाणुभी जब एकट्ठे हुए और भेदका ज्ञान न रहा तब एक है ऐसी बुद्धि होनेमें क्या रोक होगी यह कहना ठीक नहीं क्योंकि सेना और बन के अंग मनुष्य वृक्ष इनका प्रत्यक्ष होताहै इस लिये उनके समूहकाभी प्रत्यक्ष होता पर परमाणु अतीन्द्रिय पदार्थहैं उनके समुदायका प्रत्यक्ष क्योंकर होसक्ता है इसलिए सेना वा बनका दृष्टांत योग्य नहीं भिन्न अवयवी अवश्यमानने ही पड़ेगा और उसीका प्रत्यक्ष होता है प्रत्यक्षकी परीक्षा पूरी हुई अब अनुमान प्रमाणकी परीक्षा की जातीहै ।

रोधोपघातसादृश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानमप्रमाणम् ॥३५॥

रोक उपघात और सादृश्य से व्यभिचार आता है इसलिये अनु-
मान प्रमाण नही जैसे नदीके चढावसे ऊपर वर्षा होनेका जो अनुमान
कियाथा वह ठीक नहीं क्योंकि नदी का चढाव रोकनेसे भी हो सक्ताहै
आगे किसीने बांध बांधदिया तो नदी अवश्य फैलेहीगी इससे ऊपर
वर्षाका अनुमान मिथ्या होगया बिलके फटनेसे भी चीटियां अंडाले-
कर चलती हैं तब इससे होनेवाली वर्षा का अनुमानयथार्थ न हुआ
ऐसेही मनुष्यभी मोरके ऐसा शब्द कर सक्ताहै तो शब्दके सादृश्यसे अनु-
मान मिथ्याहुआ जैसे किसी ने मोरके शब्दको सुनकर मोरका अनुमान
किया पर शब्द तो मनुष्यने कियाथा इसलिये यह अनुमान ठीक न हु-
आ उक्त कारणोंसे अनुमानका प्रमाणत्व नहीं हो सक्ता ।

नैकदेशत्राससादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ॥३६॥

उक्त अनुमानका व्यभिचार नहीं है एकदेश त्रास और सादृश्यसे
अर्थान्तर के आनेसे क्योंकि विशेषण युक्त हेतु होताहै विन बिशेषण
हेतु नहीं होसक्ता पूर्व जलसहित बर्षाका जल सोते का बडे वेगसे बह-
ना बहुतसा फेन फल पत्ता काठ आदिकों के देखनेसे ऊपर हुई बर्षा
का अनुमान होताहै बहुधा चीटियों के अंडा लेकर चलने से होनेवाली
वर्षाका अनुमान किया जाता न कि एक आध चीटियों के झुंड केदेख-
ने से ऐसेही जब मोर के शब्दका निश्चय रहता और यह पक्का ज्ञान
रहता है कि यह शब्द मनुष्य ने नहीं किया तभी यथार्थ अनुमान हो
ता है और जो भलीभांति विचार किये विना झट पट साधारण हेतुसे
ही अनुमान कर बैठता प्रायः उसीका अनुमान मिथ्या होताहै तो क्या
यह अनुमान प्रमाणं का दोष गिना जायगा कदापि नहीं किन्तु यह दो
ष अनुमान करने वाले ही का माना जायगा अनुमान भूत भविष्य और
वर्त्तमान तीन कालविषय होता है यह कहाथा इस पर शंका करता है

वर्त्तमानाभावः पततः पतितपतितव्यका लोपपत्तेः ॥३७॥

डंठुर से अलग हुए भूमिपर पड़ते फलका जो ऊपरका मार्ग है
उससे युक्तकाल पतित काल कहा जायगा और जो नीचेका मार्गहै वह

पतितव्य मार्ग हुआ तद्युक्त पतितव्यकाल कहावेगा अब तीसरा मार्ग
कोई नहीं रहा जिसको बर्त्तमान कहैं इस लिये बर्त्तमान काल कोई है
नहीं यह सिद्ध होगया तब अनुमान त्रिकाल विषय कैसे
हो सकता है ।

तयोरप्यभावो वर्त्तमानाभावे तदपेक्षत्वात्॥३८॥

मार्गसे काल सूचित नहीं होता किंतु कालकी जतलाने वाली
क्रियाहै जब पड़नेकी क्रिया पूरी होगई तब वह पतित काल कहा
जायगा और जब उत्पन्न होने वाली है तब पतितव्य काल जब द्रव्यके
विद्यमान रहते क्रियाका ग्रहण हो तब वर्त्तमान काल जानना चाहिये
जो द्रव्यमें विद्यमान पतनक्रिया को नहीं मानता है वह किसकी
समाप्ति और उत्पन्न होने वाली क्रिया को मानता है पतितकाल यह
भूत क्रिया पतितव्यकाल यह भविष्य क्रिया इन दोनों कालों में द्रव्य
क्रिया हीन रहता है फल नीचे पड़ता है यह वस्तुक्रिया युक्त है
उसी को बर्त्तमान काल कहते उक्त दोनों काल वर्त्तमान के आधीन
हैं यदि इस को न माने तो भूत और भविष्य भी सिद्ध नहीं हो
सकते ।

नातीतानागतयोरितरेतरापेक्षासिद्धिः ॥३९॥

जो बर्त्तमान काल का लोप करदें तो परस्पर सापेक्षअती
त और अनागत की सिद्धि भी नहीं हो सकती जैसे रूप स्पर्श और
गन्ध रस परस्परापेक्ष सिद्ध नहीं होते ऐसे ही अतीत और अनागत भी
सिद्ध नहीं होसकते हैं जैसे कोई पूछे कि भूत काल किसे
कहते तो यही कहना पड़ेगा कि जो भविष्य से भिन्न है वह भूत
ऐसे ही जब भविष्य का लक्षण कोई पूछेगा तब यही कहना पड़ेगा
कि जो भूत से अन्य वह भविष्य है इसी को अन्योन्याश्रय दोष
कहते हैं अर्थात एक की सिद्धि में दूसरे की अपेक्षा और दूसरे की
सिद्धि में पहिले की ऐसे स्थान में दोमें से एककी भी सिद्धि नहीं
हो सकती है।

वर्त्तमानाभावे सर्वाग्रहणं प्रत्यक्षानुपपत्तेः ॥४०॥

वर्त्तमान के अभाव में प्रत्यक्ष की अनुपपत्ति से सबका अग्रहण
होजायगा इंद्रिय और पदार्थके मेल से जो ज्ञान होता उसे प्रत्यक्ष क-

हते अविद्यमान वस्तु प्रत्यक्ष का विषय नहीं होसक्ता प्रत्यक्ष की अ-सिद्धि होने से अनुमान और शब्द प्रमाण भी सिद्ध नहीं होसक्ते क्योंकि इन दोनोंका प्रत्यक्ष सहायक है जब सब प्रमाणोंका लोप हुआ तब किसी वस्तु का ज्ञान न होगा दो प्रकार से वर्त्तमान कालका ग्रहण होताहै कहीं तो वस्तु की सत्ता से होता जैसे द्रव्य है और कहीं क्रियाकी परम्परासे जैसे पकाताहै काटताहै एक अर्थ विषय अनेक प्रकारकी क्रिया को क्रियापरम्परा कहते हैं जैसे बटलोई को चूल्हे पर धरना उस में पानी डालना लकड़ियों को सुधारना अग्नि का जलाना करछीका चलाना मांड का पसाना और नीचे धरना आदि पाकक्रिया कहाती है ऐसेही कुल्हाड़ी को उठाकर फिर फिर काठपर पटकने को छेदन क्रिया कहते यही क्रियापरंपरा आरंभ से लेकर जबतक पूरी न होगी तबतक पकाताहै काटताहै यह व्यवहार होताहै इसके आधार कालको वर्त्तमान कहते हैं ।

कृततार्कत्तव्यतोपपत्तेस्तूभयथा ग्रहणम् ॥४१॥

कृतता और कर्त्तव्यता की उपपत्ति से उभयथा ग्रहण होता है जब क्रिया परंपरा का आरंभ नहीं हुआ पर आगे करने की इच्छा है यही भविष्य काल हुआ जैसे पकावेगा क्रिया परंपरा के पूरे होने का नाम अतीतकाल है जैसे पकाया और क्रियापरंपरा का आरंभ तो हुआ पर पूरी नहीं हुई इसी को वर्त्तमान कहते हैं इस प्रकार क्रिया में तीन कालका व्यवहार होता है क्रिया की पूर्णता कृतता करने की इच्छा कर्त्तव्यता और विद्यमान क्रियमाण कही जाती इसलिये वर्त्तमानकाल अवश्य मानना चाहिये अनुमान की परीक्षा पूरी हुई आगे उपमान की परीक्षा की जायगी ।

अत्यंतप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानासिद्धिः ॥४२॥

अत्यंत सा दृश्य से उपमान प्रमाण की सिद्धि नहीं हो सक्ती क्योंकि जैसी गाय वैसी गाय ऐसा व्यवहार नहीं होता बहुत सादृश्य से उपमान सिद्ध नहीं होता जैसा बैल वैसा भैंसा होता है यह व्यवहार नहीं कुछेक तुल्यता होने से भी उपमान सिद्ध नहीं होसक्ता क्योंकि सभी की सबसे उपमा नहीं दीजाती कुछ तुल्यता तो सभी की सब

के साथ हो सक्ती है इसलिये उपमान प्रमाण सिद्ध नहीं होता है । इसका उत्तर ।

प्रसिद्धसाधर्म्यादुपमानसिद्धेर्यथोक्तदोषा-नुपपत्तिः ॥ ४३ ॥

प्रसिद्ध समानधर्म से उपमान की सिद्धि होने से उक्त दोषकी उपपत्ति नहीं होसक्ती साधर्म्यके संपूर्ण प्राय वा अल्पपनका आश्रय लेकर उपमान प्रमान प्रवृत्त होता यह बात नहीं है किंतु प्रसिद्ध तुल्यताका आश्रय करके इसकी प्रवृत्ति होती है जहां यह समान धर्म मिलता है वहां उपमानका निषेध नहीं होसक्ता इसलिये उक्तदोष नहीं आता है ।

प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षसिद्धेः ॥ ४४ ॥

अच्छातो प्रत्यक्षसे अप्रत्यक्षकी सिद्धि होनेसे उपमान अनुमानही के अंतर्गत होजायगा जैसे प्रत्यक्ष धुआंके देखनेसे अप्रत्यक्ष अग्निका अनुमान होताहै वैसेही गौके प्रत्यक्षसे अप्रत्यक्ष गवयका अनुमान हो जायगा इसलिये यह अनुमान प्रमाणसे पृथक् प्रमाण नहीं होसक्ता ।

नाप्रत्यक्षे गवये प्रमाणार्थमुपमानस्य पश्याम इति ॥४५॥

अप्रत्यक्षगवय में उपमान प्रमाणका अर्थ हम नहीं देखतेहैं जब गाय के देखने वालेको उपमानका उपदेश कियाजाता और वह गायके समान जंतुको देखता तब उसको यह ज्ञान होताहै कि इस जीव का नाम गवय है ऐसा अनुमान में नहीं होता अर्थात् अनुमान विन देखे ही वस्तुका होता यह अनुमान और उपमान में विशेषताहै और यह भी एक बात है कि उपमान दूसरेही के लिये काम में आता और अनुमान अपने लिये भी ।

जिसको उपमान अप्रसिद्ध है उसके लिये जिसको दोनों प्रसिद्ध हैं वह उपमान का प्रयोग करता है ।

तथेत्युपसंहारादुपमानसिद्धेर्नाविशेषः ॥४६॥

वैसाही गवय होताहै ऐसे समान धर्मके उपसंहारसे उपमान सिद्ध होताहै ऐसा अनुमानमें नहीं होता अनुमान और उपमान में यहभी विशेषता समझनी चाहिये उपमानपरीक्षा पूर्ण हुई ।

शब्दोऽनुमानमर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात् ॥४७॥

शब्द अनुमानही है भिन्न प्रमाण नहीं क्योंकि शब्दका अर्थ अनुमानके योग्य है जैसे प्रत्यक्ष से अज्ञात साध्यका ज्ञात हेतुसे पीछे अनुमान होता है ऐसेही ज्ञात शब्दसे पीछे अज्ञात अर्थका ज्ञान होताहै इसलिये शब्द अनुमान ही है ।

उपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वात् ॥४८॥

ज्ञानकी प्रवृत्ति दोप्रकार से नहीं होती इससे भी शब्द अनुमान नहीं है प्रमाणांतरमें उपलब्धि दोप्रकार से होती अनुमान में प्रवृत्ति जिसप्रकार से होती उससे अन्यही प्रकार से उपमानमें होतीहै अर्थात् अनुमान का फल और शब्द का फल एकही प्रकारकाहै भिन्न नहीं ।

सम्बन्धाच्च ॥४९॥

परस्पर सम्बन्ध युक्त शब्द अर्थ के सम्बन्ध की प्रसिद्ध होने से शब्द के ज्ञान से अर्थ का ज्ञान होता है जैसे सम्बन्धवाले साध्य साधन के सम्बन्ध ज्ञान से साधन के ज्ञात होने से साध्य का ज्ञान होता है ।

उक्त शंकाओं का उत्तर लिखते हैं ।

आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दार्थसम्प्रत्ययः ॥५०॥

प्रमाणिक लोगों के उपदेशसामर्थ्य से शब्द से अर्थ का बोध होता है स्वर्ग अपसरा उत्तरकुरुदेश और सात दीप इत्यादि अप्रत्यक्ष पदार्थों का ज्ञान केवल शब्दसे नहीं होता किन्तु सत्यवक्ताओं का यह शब्द है इसलिये अर्थ का बोध होता है ऐसा अनुमान में नहीं यही शब्द और अनुमान में ज्ञान की प्रवृत्तिका भेद है और यह जो कहा था कि सम्बन्ध युक्त शब्द और अर्थ के ज्ञान से बोध होता है यह भी ठीक नहीं ।

प्रमाणतोऽनुपलब्धेः ॥५१॥

प्रमाण से व्याप्ति रूप संबंध की प्रतीति नहीं होती प्रत्यक्ष प्रमाण से व्याप्ति नहीं कहसकते क्योंकि इन्द्रिय के विषय नहीं जिस

इन्द्रिय से शब्दका ग्रहण होता उस इन्द्रिय से अर्थ का ग्रहण कभी नहीं होसकता और जो प्राप्तिरूप संबंध शब्द और अर्थ का मान भी लोगे तो यही होगा कि शब्द के पास अर्थ वा अर्थ के पास शब्द पर यह बाधित है ।

पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च संबन्धाभावः ॥५२॥

क्योंकि पूरण प्रदाह और पाटन की उपलब्धि नहीं होने से संबन्ध का अभाव है अर्थात् जो शब्द का अर्थ के साथ व्याप्ति रूप सम्बन्ध होता तो अन्न शब्द के उच्चारण से मुख भर जाता अग्नि शब्द के बोलने से जलन होती और खड्ग शब्द के कहने ही से मुख के खंड खंड होजाते इससे सिद्ध हुआ कि शब्द अर्थ का संबंध नहीं है ।

शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः ॥५३॥

शब्द से अर्थ के ग्रहण की व्यवस्था के देखने से व्यवस्था का कारण शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का अनुमान किया जाताहै जो संबंध न होता तो सब शब्दों से सब अर्थों का बोध हो जाता इसलिये संबन्ध का खण्डन नहीं हो सकता इसका समाधान ।

न सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य ॥५४॥

शब्द और अर्थ की व्यवस्था संबंध की की हुई नहीं किन्तु संकेत इसका हेतु है इस शब्द का यह अर्थ है यह जो वाच्य और वाचकके नियम का निश्चय है इसी को समय वा संकेत कहते हैं इसके ज्ञान से शब्दके सुनने से अर्थ का बोध होता और जो यह संकेत ज्ञात न हो तो शब्द के सुनने से भी अर्थ का बोध कभी नहीं होता जैसे किसी ने संकेत किया कि पंकज इस शब्द से कमल समझना चाहिये अब जिस मनुष्य को यह संकेत ज्ञात होगा उसी को पंकज शब्दके सुनने से कमल रूप अर्थ का ज्ञान होगा और जिसको उस संकेत का ज्ञान नहीं उसको उक्त शब्द के सुनने से भी कमल का ज्ञान नहीं होता संबन्ध बादी भी इसे छोड़ नहीं सकते ।

जातिविशेषे चानियमात् ॥५५॥

किसी विशेष जाति में नियम न होने से भी शब्द से अर्थ का ज्ञान सामयिक है स्वाभाविक नहीं क्योंकि ऋषि आर्य और म्लेच्छ अ-

पनी इच्छा के अनुसार अर्थ के ज्ञान के लिये शब्द का प्रयोग करते हैं जो शब्द और अर्थ का संबन्ध स्वाभाविक होता तो इच्छा के अनुसार शब्द का प्रयोग कभी नहीं हो सकता जैसे प्रकाश से रूप का ज्ञान होना स्वाभाविक है अर्थात सब के लिये एकसां प्रकाश से सब किसी को रूप का ज्ञान होता ऐसा शब्द और अर्थ का संबन्ध स्वाभाविक नहीं ।

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ॥५६॥

मिथ्या बाधितत्व और पुनरुक्त दोष होने से शब्द की प्रमाणता नहीं हो सक्ती जैसे लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नाम यज्ञ करै परन्तु उक्त यज्ञ करने से भी पुत्र की उत्पत्ति नहीं देखते इससे अनुमान होता है कि जिस वाक्य का दृष्टफल है उसमें मिथ्यात्व देखा गया तो जिस वाक्य का फल अदृष्ट है जैसे स्वर्गकी इच्छा जिसे हो वह अग्नि होत्र करै यह बात भी मिथ्याही होगी व्याघात दोष से भी शब्द प्रमाण नहीं होसक्ता जैसे एक स्थानमें कहा कि सूर्य के उदय होने पर होम करना चाहिये फिर अन्यत्र कहा कि सूर्य्योदय से पहिले होम करना चाहिये ऐसेही उदयकालमें होम करने से दोष और बिन उदय काल में होम करने में भी दोष कहा यह दोनों बात परस्परमें बिरुद्ध होनेसे बाधितहैं इसीको व्याघातदोष कहते अर्थात अपनी बात का आपही खंडन करना उक्त दोष के आने से दोमेंसे एक अवश्य मिथ्या होगा ऐसेही अभ्यास में तीनबार पहिली ऋचा बोलना और पिछिली भी तीनबार यह पुनरुक्ति दोष आता है और जिस में पुनरुक्तिहो वह मतवाले का वाक्य कहाता है इसलिये शब्द अप्रमाणहुआ ।

न कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् ॥५७॥

पुत्रयज्ञ में जो मिथ्या दोष दिखलाया वह नहीं होसक्ता कर्म कर्त्ता और साधन के वैगुण्य से जब यह तीनों यथार्थ होंगे तो निश्चय फलकी सिद्धि होगी इसमें कुछ संदेह नहीं जैसे कर्त्ता मूर्ख अथवा दुष्ट आचरण वाला हुआ तो यह कर्त्ता का वैगुण्य अर्थात दोष हुआ मिथ्या प्रयोग किया तो यह कर्म का वैगुण्य कहावेगा ऐसे ही जो होम का द्रव्य अच्छा न हुआ वा मंत्र न्यून अधिक किंवास्वर वर्ण से

हीन पढ़े गये तो यह साधन वैगुण्य हुआ इन तीनों में से एक भी दुष्ट होगा तो फल की सिद्धि कदापि न होगी क्योंकि लोक में भी गुण के योगसे ही कार्य की सिद्धि देखने में आती है यह लौकिक से पृथक नहीं इस लिये मिथ्या दोष देना उचित नहीं है ।

अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात् ॥५८॥

होम करने में जो व्याघात दोष दियाथा उसका खंडन इस सूत्र से करते हैं जो अंगीकार कर के काल का भेद करता है उस के लिये दोष कहा है इस लिये विधि के भ्रष्ट होने में यह निन्दाका कथन है किन्तु व्याघात रूप दोष नहीं अर्थात् वेद में जहां अनेक पक्षहैं उनमें से किसी एक पक्ष को स्वीकार करले फिर उस का त्याग करना अनुचित है ।

अनुवादोपपत्तेश्च ॥ ५९॥

अभ्यास में जो पुनरुक्त दोष दिया था वह यथार्थ नहीं अनुवाद की उपपत्ति होने से अनर्थक अभ्यास पुनरुक्त कहाता और अर्थवान अभ्यास को अनुवाद कहते हैं तीन बार पहिली ऋचा पढ़नी और तीन बार पिछिली बोलनी यह जो अभ्यास है वह अर्थवान होने से अनुवाद कहा जायगा क्योंकि प्रथम और अन्त्य के तीन बार पढ़ने से सामिधेनियों की संख्या पूरी होती है सामिधेनी पंद्रह होनी चाहिये तीन २ बार न पढ़ें तो संख्या ऊन हो जाय इसलिये अर्थवान होने से यह अभ्यास अनुवाद कहा जायगा पुनरुक्त नहीं होसक्ता ।

वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ॥ ६० ॥

वाक्य बिभाग के अर्थ ग्रहण से भी शब्द प्रमाण है लोक में शिष्ट लोग विधि अनुवाद आदि वाक्यों का विभाग करते हैं और अनुवाद वाक्य को सार्थ मानते हैं वैसे ही वेद में भी अनुवाद वाक्य अर्थवान माने जाते हैं ।

विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥६१॥

ब्राह्मण वाक्य तीन प्रकार से विभाग किये गये हैं विधि वाक्य अर्थवादवाक्य और अनुवादवाक्य इन के लक्षण क्रम से आगे लिखते हैं ।

विधिर्विधायकः ॥ ६२ ॥

जो वाक्य विधायक अर्थात् आज्ञा करने वाला होता है उसे विधिवाक्य कहते जैसे स्वर्ग की इच्छा जिसे हो वह अग्नि होत्र करै ।

स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ॥ ६३ ॥

स्तुति निन्दा परकृति और पुराकल्प यह चार प्रकार का अर्थवाद है विधिवाक्य के फल कहने से जो प्रशंसा है उसे स्तुति कहते क्योंकि फल की प्रशंसा सुनने से प्रवृत्ति होती है जैसे देवों ने इस यज्ञ को करके सब को जीता इस यज्ञ के करने से सब कुछ प्राप्त होता इत्यादि अनिष्ट फल के कथन को निन्दा कहते निन्दित कर्मों के छोड़ने के लिये यह की जाती है जैसे यज्ञों के बीच में ज्योतिष्टोम पहिला है इस को न कर के जो और यज्ञ करता है वह गढ़े में पड़ता है और जो वाक्य मनुष्यों के कर्मों में परस्पर विरोध दिखावे उसे परकृति कहते जैसे कोई तो वपाको स्रुवे में रखकर प्रणीता में डालते और कोई घृत को स्रुवे से प्रणीता में डालते और उस की प्रशंसा करते ऐतिह्यसहचरितविधि को पुराकल्प कहते जैसे ब्राह्मणों ने सामस्तोत्रकी स्तुति की इसलिये हम भी यज्ञ का विस्तार करैं पहिले शिष्ट लोग ऐसा करते आये वा कहते आये इसको ऐतिह्य कहते हैं स्तुति और निन्दाबोधक वाक्यों के साथ सम्बन्ध होने से विधि के आश्रय किसी अर्थ के प्रकाश करने से परकृति और पुराकल्प अर्थवाद कहाते हैं अर्थ का कहना अर्थवाद शब्द का अर्थ है ।

विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः॥६४॥

विधि का अनुवचन और विधि से जो विधान किया गया उस का अनुवचन अनुवाद कहाता पहिला शब्दानुबाद और दूसरा अर्थानुवाद कहाता है विहित का अनुबाद करने का प्रयोजन यह है कि स्तुति निन्दा अथवा विधि का शेष ये सब जो विहित है उसके विषय में किये जावें लोक में भी तीन ही प्रकार के वाक्य देखने में आते हैं जैसे अन्न पकाओ यह विधिवाक्य वा अनुज्ञावाक्य कहाता आयु तेज बल सुख और फुरती यह सब अन्न में विद्यमान हैं यह

अर्थवाद वाक्य हुआ क्योंकि विधि वाक्य में अन्न पकाने की आज्ञा की और इस से अन्न की स्तुति बोधित हुई आप पकाइये पकाइये शीघ्र पकाइये ऐ प्यारे पकाओ यह अनुवाद वाक्य कहाते क्योंकि विधि वाक्य से जो विधान किया गया उसी का अनुवचन इसमें है जैसे लोक में वाक्यों का अर्थ ज्ञान विभाग से होता है और वह प्रमाण समझे जाते ऐसे ही विभाग से अर्थ ज्ञान होने के कारण वेद वाक्यों का भी प्रमाणत्व होना उचित है ।

नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः॥६५॥

फिर शंका करते हैं कि पुनरुक्त अशुद्ध और अनुवाद शुद्ध इन में विशेष नहीं क्योंकि दोनों ही में चरितार्थ शब्द के अभ्यास की उपपत्ति है उक्तार्थ शब्द के अभ्यास अर्थात बार २ पढ़ने से दोनों हीं दुष्ट हैं ।

शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः॥६६॥

उक्त पूर्व पक्ष का खण्डन इस सूत्र से करते हैं कि पुनरुक्त और अनुवाद में विशेषता नहीं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि अर्थवान अभ्यास को अनुबाद और अर्थरहित अभ्यास को पुनरुक्त कहते यही भेद है जैसे किसी ने कहा जाओ फिर कहा जाओ जाओ अर्थात् शीघ्र जाओ देर मत करो यह अभ्यास सार्थक है ।

तो क्या शब्द के प्रमाणत्व दूर करने वाले हेतुओं के खण्डन करने ही से शब्द का प्रमाणपन सिद्ध होजायगा इस आक्षेप का समाधान करते हैं ।

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्॥६७॥

मंत्र और आयुर्वेद अर्थात वैद्यक शास्त्र इनके प्रामाण्य की नाईं वेद का प्रामाण्य है आप्त के प्रमाणत्व से जैसे विष भूतादिक के दूर करने वाले मंत्रों के प्रयोग से उन का फल जैसा का तैसा देखने में आता ऐसे ही आयुर्वेद में जिस रोग की निवृत्ति के लिये जो उपाय लिखे हैं उनका फल ठीक वैसा ही देखने में आता जैसा कि शास्त्र में लिखा है आप्त उन्हें कहते जो यथार्थवक्ता दूसरे के हित को

इच्छा करनेवाले प्राणीमात्र पर दयावान धर्म के तत्वजाननेवाले हों ऐसे लोग प्राणियोंके सुख के लिये त्यागनेयोग्य वा ग्रहण करनेयोग्य पदार्थों का उपदेश करते हैं जैसे आप्तों के उपदेश से दृष्ट फलवाले वैद्यक शास्त्र का प्रमाणत्व सिद्ध होता ऐसे ही आप्त लोगोंके उपदेश से वेदादिसत्यशास्त्रोंका भी प्रामाण्य मानना चाहिये और जो दृष्ट फलवाले वैद्यक आदिके कर्त्ता ऋषि मुनि प्रामाणिक लोगहैं वही वेदार्थ के जानने वाले और व्याख्यान करने वाले हैं इस से भी वेद का प्रमाणत्व सिद्ध होता है जैसे बटलोही में एक सीथ के टटोलने से सब पक गया वा अभी कच्चा है इस का ज्ञान होजाता वैसे ही दृष्ट फल वाले वाक्य के प्रमाणत्व से अदृष्टार्थक वाक्य का भी प्रमाणत्व अनुमान से सिद्ध हो सकता है ।

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥६८॥

चार ही प्रमाण नहीं किन्तु ऐतिह्य अर्थापत्ति संभव और अभाव यह भी प्रमाण हैं जिसका वक्ता ज्ञात नहीं परंपरा से प्रवाद चला आता है । अर्थात् जिस का मुख्य बक्ता प्रसिद्ध न हो केवल एक से दूसरे ने फिर दूसरे से तीसरे ने इसी प्रकार से लोक में जो परंपरा से कहते चले आये उसको ऐतिह्यप्रमाण कहते हैं जैसे किसी ने कहदिया कि इस बड़ के वृक्ष पर भूत रहता है जो पूछो इस में क्या प्रमाण तो तुरंत यही उत्तर मिलेगा कि बड़े लोगों से सुनते चले आये हैं बस इसी का नाम ऐतिह्य है अर्थ से जिस की प्राप्ति हो अर्थात् एक अर्थ के कहने से दूसरे अर्थ की प्राप्ति अवश्य होजाय इसे अर्थापत्ति कहते जैसे किसी ने कहाकि यह देवदत्त मोटा है और दिन को नहीं खाता बस इतने कहने मात्र से रात्रि का भोजन अर्थात् सिद्ध हो जायगा क्योंकि बिन भोजन के मोटा नहीं हो सकता संभव जैसे मन में पंसेरी और पंसेरी में सेर अर्थात् मन पंसेरी के बिना नहीं बन सकता तो मन के होने से पंसेरी का होना संभव प्रमाण से जाना जायगा कारण के अभाव से कार्य के अभाव का ज्ञान अभाव प्रमाण से होता है ।

शब्दऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः॥६९॥

ऐतिह्य का शब्द प्रमाणमें अर्थापत्ति सम्भव और अभाव इनका अनुमान में अन्तर्भाव होने से प्रमाण चारही हैं चतुष्ट्वका प्रतिषेध नहीं हो सक्ता क्योंकि प्रत्यक्ष से संबद्ध अप्रत्यक्षका ज्ञान अनुमान कहाता वैसेही देवदत्त का मोटापन जो प्रत्यक्ष देख पड़ता है उससे अप्रत्यक्ष रात्रि भोजन का ज्ञान अनुमान से होजायगा जब कहा कि देवदत्त मोटा है और दिन में नहीं खाता तब निस्संदेह रात्रि में खाता होगा इस बात का अनुमान हो जायगा क्योंकि बिन भोजन मोटापन सिद्ध नहीं होता संभव प्रमाण से मन में पंसेरी का ज्ञान होता है यह भी अनुमानहीहै क्योंकि पंसेरियों के समुदाय को मन कहते और बिन अवयवों के अवयवी नहीं रहसक्ता तो जब अवयवी विद्यमान है तब उसके अवयवों का ज्ञान अनुमान से हो इसमें क्या प्रतिबन्ध है ऐसेही कारण के अभाव से कार्य का अभाव अनुमानही से ज्ञात होजायगा पृथक प्रमाण मानना आवश्यक नहीं इतने प्रबंध से यह सिद्ध होगया कि ऐतिह्य आदि प्रमाण तो हैं पर पृथक् प्रमाण नहीं पहिले जो प्रत्यक्ष आदि चार प्रमाण कहे हैं उन्हीं में इनका अन्तर्भाव है अब अगले सूत्र से अर्थापत्ति का प्रमाणत्व उड़ाते हैं ।

अर्थापत्तिरप्रमाणमनैकान्तिकत्वात् ॥७०॥

व्यभिचार होने से अर्थापत्ति प्रमाण नहीं जैसे किसी ने कहा कि मेघों के न रहते वर्षा नहीं होती तब अर्थात् सिद्ध हुआ कि मेघों के रहने से वर्षा होती है यह अर्थापत्ति प्रमाण का फल है पर कभी मेघों के रहते भीं वृष्टि नहीं होती इसलिये अर्थापत्ति को प्रमाणत्व नहीं हो सक्ता है ।

अनर्थापत्तावर्थापत्त्यभिमानात् ॥७१॥

अर्थापत्ति में व्यभिचार नहीं आता अनर्थापत्ति में अर्थापत्ति के अभिमान होने से कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नहीं होती इस वाक्य से विरोधी अर्थ कारण के विद्यमान रहते कार्य उत्पन्न होता यह अर्थात् सिद्ध हो जाता है क्योंकि अभाव का विरोधी भाव है इस

लिये कारण की विद्यमानता में कार्य का होना कारण की विद्यमानता
का व्यभिचार नहीं है क्योंकि यह निश्चित है कि कारण के न रहते
कार्य की उत्पत्ति कभी नहीं होती इसलिये व्यभिचार नहीं है और
जो कारण के विद्यमान रहते किसी निमित्त के प्रतिबंध से कार्य न
होना यह तो कारण का धर्म है अर्थापत्ति का प्रमेय नहीं अर्थापत्ति
का प्रमेय तो इतनाही है कि कारण के विद्यमान रहते कार्य होता
है इससे यह बात सिद्ध होगई कि अनर्थापत्ति में अर्थापत्ति का अभि-
मान कर निषेध किया गया है ॥

प्रतिषेधाप्रामाण्यं चानैकान्तिकत्वात् ॥७२॥

अर्थापत्ति प्रमाण नहीं व्यभिचार होने से यह निषेध वाक्य है
इससे अर्थापत्ति के प्रमाणत्व का खण्डन होता है नकि अर्थापत्ति की
सत्ताका तो यह निषेध भी अनैकांतिक अर्थात् व्यभिचारी हुआ तो अ
प्रमाणिक से किसी वस्तु का खण्डन नहीं होसक्ता क्योंकि स्वयं अप्र-
माण है वह दूसरे का निषेध क्योंकर कर सकेगा यदि कहो कि जिन
अर्थों का विषय नियत रहता है उनका अपने विषय में व्यभिचार
होता है और निषेध का विषय असद्भाव नहीं अर्थात् अर्थापत्ति की
अविद्यमानता का निषेधक नहीं तो इसका समाधान यह है ।

तत्प्रामाण्ये वा नार्थापत्त्यप्रामाण्यम् ॥७३॥

प्रतिषेधका प्रामाण्य मानोगे तो अर्थापत्ति का भी अप्रमाणत्व
सिद्ध नहीं होसक्ता क्योंकि कारण की विद्यमानता में कार्य के होने से
अर्थापत्ति का भी अव्यभिचार विषय है इसका सारांश यह है कि जो
कहीं व्यभिचार आने पर भी निषेध को प्रमाण मानो तो अर्थापत्ति
प्रमाण क्यों नहीं इतने प्रबन्ध से अर्थापत्ति का प्रमाणत्व सिद्ध किया
अब आगे अभाव के प्रमाणत्व में शंका समाधान होंगे ।

नाभावप्रामाण्यं प्रमेयासिद्धेः ॥७४॥

अभाव का प्रमाणत्व नहीं होसक्ता प्रमेय के प्रसिद्ध न होने से
क्योंकि जिस का प्रमेय प्रसिद्ध नहीं वह प्रमाण किस काम का इस-
लिये उसका मानना व्यर्थ है ।

लक्षितेष्वलक्षणलक्षितत्वादलक्षितानां तत्प्र-

मेयसिद्धेः ॥७५॥

पीछे कहा था कि प्रमेय के प्रसिद्ध न होने से अभाव का प्रमा-
णत्व नहीं होसक्ता उसका खण्डन करते हैं प्रमेय प्रसिद्ध होने से अ-
भाव प्रमाण है जैसे कई वस्त्र चिन्हवाले और कई एक बिन चिन्ह
के हैं और एक ही स्थान में धरे हैं किसी मनुष्य को कहा कि उन व-
स्त्रों में से बिन चिन्ह के वस्त्र लेआ अब वह जिन वस्त्रों में चिन्हके
अभाव को देखेगा उन्हीको लेआवेगा तो लक्षणों के अभाव से ज्ञान
हुआ और जो ज्ञान का हेतु है वह प्रमाण कहाता है ।

असत्यर्थे नाभाव इतिचेन्नान्यलक्षणोपपत्तेः ॥७६॥

जहां पहिले होकर फिर कुछ नहो वहां उसका अभाव कहा
जाता है जैसे किसी स्थान में पहिले घट रखा था और फिर वहां से
हटालिया तो वहां घट का अभाव होगया बिन लक्षणवाले वस्त्रों
में पहिले लक्षण थे और फिर दूर करदिये गये ऐसा नहीं है इसलिये
उनमें लक्षणाभाव सिद्ध नहीं होसक्ता यह कहना ठीक नहीं क्योंकि
जैसे लक्षणयुक्त वस्त्रों में लक्षणों की उपपत्ति देखता है वैसेही अलक्षि-
तों में लक्षणों के अभाव को देखकर वस्तु को जानलेता है ।

तत्सिद्धेरलक्षितेष्वहेतुः ॥७७॥

लक्षण वाले वस्त्रों में जो लक्षण विद्यमान हैं उन लक्षणों का
अभाव नहीं होसक्ता और जो लक्षितों में लक्षण विद्यमान हैं उनका
अलक्षितों में अभाव कहना बाधित है क्योंकि जो विद्यमान है उसका
अभाव कहना वंध्या के पुत्र के समान है इसका उत्तर ।

न लक्षणावस्थितापेक्षासिद्धेः ॥७८॥

ऐसा नहीं कहते कि जो लक्षण विद्यमान हैं उनका अभाव परंतु
कितनों में लक्षण विद्यमान और कइयों में अविद्यमान हैं अब जिनमें
लक्षणों की विद्यमानता नहीं देखता है उनको लक्षणाभाव से जान
लेता है ।

प्रागुत्पत्तेरभावोपपत्तेश्च ॥७९॥

अभाव दो प्रकार का होता है एक तो उत्पत्ति होने के पहिले
जैसे जब तक घट उत्पन्न नहीं हुआ तबतक उसका अभाव है और

दूसरा जब कोई वस्तु नष्ट होजाती तब उसका अभाव होजाता है अ-
लक्षित वस्त्रों में पहिले प्रकार का अभाव है ।

शब्द के प्रमाणत्व में आप्तोपदेश यह विशेषण दिया है अर्थात्
जो यथार्थ वक्ताका शब्द है वह प्रमाण है इस विशेषणसे शब्द का अ-
नेक विधत्व बोधित होता है कि शब्द अनेक प्रकार का है उसमें सा-
मान्य रूप से विचार किया जाता है कि शब्द नित्य है वा अनित्य ।

विमर्शहेत्वनुयोगे च विप्रतिपत्तेः संशयः ॥८०॥

शब्द आकाश का गुण व्यापक नित्य और अभिव्यक्ति धर्मवाला
अर्थात् क्रिया से शब्द का केवल आविर्भाव होता है शब्द उत्पन्न नहीं
होता ऐसा कोई कहते कईएक गन्ध आदि गुणों का सहचारी द्रव्य में
प्रविष्ट अभिव्यक्ति धर्मवान ऐसामानते हैं शब्द आकाश का गुण उत्पत्ति
विनाशवाला कइयों का ऐसा मत है और आचार्य ऐसा कहते हैं कि
शब्द महाभूतों के क्षोभ से उत्पन्न होता किसी के आश्रित नहीं उत्पत्ति
विनाशवान है इसलिये संदेह होता तो फिर सिद्धांत क्या है यही कि
शब्द अनित्य है इसके हेतु अगले सूत्रमें कहे हैं ।

आदिमत्वादैन्द्रियकत्वात्कृतकवदुपचराच्च॥८१॥

आदि कहते कारण को जो सकारणकहै वह अनित्य देखागया
शब्द संयोग और विभाग से उत्पन्न होता है उत्पत्ति धर्मवान होने से
अनित्य हुआ क्या संयोग और विभाग उत्पत्ति के कारण हैं वा अभि-
व्यक्ति के इसमें सन्देह है इसलिये दूसरा हेतु दिखाते हैं ऐन्द्रियकत्व
से अर्थात् इंद्रिय के संबन्ध से शब्द का ज्ञान होता है अब यहां यह
विचार योग्य बात है कि जिस देश में शब्द का व्यंजक स्थित है उस
देशवाले शब्द का ज्ञान होता जैसे रूपका अथवा संयोग से एक शब्द
उत्पन्न हुआ उससे दूसरा फिर तीसरा चौथा इस प्रकार शब्द परम्परा
से जो शब्दकार्ण इन्द्रियसे संयुक्त हुआ उसी का प्रत्यक्ष होताहै कान
की झिल्ली से मिले शब्दही का बोध होता है इस में कुछ संदेह नहीं
यदि जहां व्यंजक है वहीं शब्द की अभिव्यक्ति मानी जाय तो जिस
स्थान में दंडा और ढोल का संयोग हुआ वहीं शब्द प्रगट हुआ फिर
सुनने वाला दूर देश में खड़ा है तो वह शब्द उसको क्यों सुन पड़ेगा
क्योंकि शब्द का कारण दंड और ढोल का संयोग तो अब है नहीं

वह तो पहिलेही नष्ट होगया व्यंजक के अभाव में व्यंग्यभी नहीं रहता
कृतकवत् उपचार से भी यही सिद्ध होता है कि शब्द की उत्पत्ति
होती न कि अभिव्यक्ति ।

पाठक वर्ग आप लोगों को यह संदेह नहो कि उतपत्ति और
अभिव्यक्ति एकही वस्तु हैं इसलिये मैं उदाहरण द्वारा इनका भेद स्पष्ट
करके लिख देता हूं उत्पत्ति उसकी होती है जो पहिले विद्यमान नहीं
हो जैसे देवदत्त के पुत्र उत्पन्न हुआ तो पुत्र पहिले न था अब हुआयह
उत्पत्ति कहावेगी और जो वस्तु पहिले से विद्यमान है पर किसी का-
रण से उसका ज्ञान नहीं होता जैसे कोई वस्तु अन्धकार में रक्खी हुई
देख नहीं पड़ती फिर दीप जलाने से दृष्टि पड़ने लगी तो यह अभि-
व्यक्ति कहावेगी क्योंकि इसकी केवल अभिव्यक्ति हुई उत्पत्ति नहींजब
पहिलेही से विद्यमान थी तब उसकी उत्पत्ति कैसी हम प्रकृत वर्णन
को छोड़ अप्रकृत में लगगये थे अब फिर उसीका विचार करते हैं कि
शब्द अनित्य है कृतकवत् उपचार से जैसे उत्कृष्ट सुख मन्द सुख कठिन
दुःख साधारण दुःख यह व्यवहार होता है वैसेही तीखा शब्द मन्द शब्द
यह भी अनुभव में आता है इसलिये शब्द अनित्य हुआ यदि कहो कि
व्यंजक के तीव्रत्व वा मन्दत्व से शब्द के ज्ञान में तीव्रता अथवा मन्द-
ता ज्ञात होती जैसे जब प्रकाश की तीव्रता होती तब रूपका ज्ञान
विशेष होता और जब प्रकाश मंद होता तब रूप का ज्ञान भी मंद ही
होता यही हाल शब्द का जानो तो नगाड़े का तीव्र शब्द बीन के मंद
शब्द को दबा देता अर्थात् बीन कानाद सुन नहीं पड़ता यह बात
सिद्ध न हो सकेगी क्योंकि अभिव्यक्ति तो जहां नगाड़ा रखा है वहां
हुई और बीन की ध्वनि दूसरे स्थान में फिर जब स्थान ही भिन्न भिन्न
हुए फिर एक शबद से दूसरे का दबाना कैसे बनेगा यदि कहो कि शब्द
की शक्ति विलक्षण है बिन पहुंचे ही अपने घर बैठे ही दूसरे शब्द को
दबा देता है तो फिर बड़ा ही गड़बड़ाध्याय होगा जैसा नगाड़े का तीव्र
शब्द पास के बीन नाद को दबा देता है वैसे ही दूरदेश के बीन श-
ब्द को दबा देगा फिर एक ही नगाड़े के तीव्र शब्द से संसार भर के
जितने मन्द शब्द एक काल में होंगे कोई भी सुनाई न देंगे और जब
शब्द की परंपरा उत्पन्नहोती यह सिद्धांत मान लिया जाय तो फिर

सुनने में नहीं आता यह कहना ठीक नहीं क्योंकि जहां किसी प्रकारकी रोक नहीं ऐसे मैदान में भी जब तक उच्चारण न करो तब तक कोई शब्द सुनाई नहीं देता इससे सिद्ध होता है कि उच्चारण करनेके पहिले शब्द न था पीछे उत्पन्न हुआ जो उत्पन्न होकर नष्ट ही वह अनित्य कहाता है।

इस सिद्धांत पर आखें में धूलकी डालते हुए आक्षेप करते हैं।

तदनुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपपत्तिः ॥८७॥

यदि अनुपलंभ अर्थात् अज्ञान से आवरण नहीं है तो आवरण की अनुपलब्धि भी अनुपलंभसे नहीहै अनुपलब्धि के अभावसे आवरण का निषेध नहीं हो सकता।

अनुपलम्भादनुपलब्धिसद्भाववन्नावरणा-नुपपत्तिरनुपलम्भात् ॥८८॥

जैसे अनुपलभ्यमान भी आवरण की अनुपलब्धि है वैसेही अनुप-लभ्यमान भी आवरण है अर्थात जो तुम कहोगे कि आवरण की अ-नुपलब्धिकी उपलब्धि नही होती तो भी अनुपलब्धि है तो हम भी कहेंगे कि आवरणकी उपलब्धि नहीं भी हैं तो भी आवरणहै।

अनुपलम्भात्मकत्वात्तदनुपलब्धेरहेतुः ॥८९॥

जो ज्ञान के विषय होता है वह है और जिस का ज्ञान नहीं हो ता वह नहीं है यह सिद्धांत है उपलब्धि के अभाव को अनुपलब्धि कहते अभावरूप होने से इस की उपलब्धि नहीं होती आवरण तो भावरूप पदार्थ है इस की उपलब्धि अवश्य होनी चाहिये और उप लब्धि तो होती ही नहीं इसलिये आवरण नहीं है अब जो शब्दको नित्य मानता है उस का हेतु यह है।

अस्पर्शत्वात् ॥९०॥

आकाश का स्पर्श नहीं होता और वह नित्य है ऐसेही शब्द का भी स्पर्श नहीं होता इस लिये शब्द भी नित्यहै।

नकर्मानित्यत्वात् ॥९१॥

व्यभिचारी होनेसे अस्पर्शत्व हेतु ठीक नहीं क्योंकि क्रिया का स्पर्श नहीं होता पर वह अनित्य है।

नाणुनित्यत्वात् ॥९२॥

परमाणुका स्पर्श होता पर नित्य है इसलिये अस्पर्शत्व हेतु से शब्दका नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता दो उदाहरणों में व्यभिचार आजाने से अस्पर्शत्व हेतु दुष्ट है इस का अभिप्राय यह है कि जिस जिस पदार्थ का स्पर्श नहीं होता वह नित्य होता जैसे आकाश ऐ-सा पूर्वपक्ष करनेवाला कहता पर सिद्धांती क्रियाका स्पर्श नही हो ता पर अनित्य है यह कह कर शब्द के नित्यत्व खंडन करता है अर्थात यह नियम नहीं है कि जिस का स्पर्श न हो वह नित्य ही हो।

सम्प्रदानात् ॥९३॥

शब्द का संप्रदान होता है इसलिये नित्य है क्योंकि जो पदार्थ दिया जाता है वह पहिले से विद्यमान रहता है आचार्य शिष्य को शब्द देता इससे पहिले से शब्द विद्यमान है यह मानना ही पड़ेगा।

तदन्तरालानुपलब्धेरहेतुः ॥९४॥

देनेवाले और लेने वाले के बीच में शब्द की उपलब्धि नहीं होती इसलिये उक्त हेतु भी ठीक नहीं जो वस्तु विद्यमान रहती वह देनेवाले से अलग होके लेनेवाले के पास पहुंचती है यह बात शब्द में नहीं घटती।

अध्यापनादप्रतिषेधः ॥९५॥

पढ़ाये जानेसे निषेध नहीं हो सकता जो संप्रदान न होता तो पढ़ना नहीं बन सक्ता इसलिये शब्दका देना मानना चाहिये।

उभयोःपक्षयोरन्यतरस्याध्यापनादप्रतिषेधः॥९६॥

संदेह की निवृत्ति न होने से दोनों पक्षोंमें पढ़ाना समान है यथा गुरु का शब्द शिष्यमें पहुंचता अथवा नृत्य के समान होता जैसे नाचका सिखाने वाला हाथ पैर आदि चलाता वैसे ही सीखने वाला उसकी नकल उतारता है शिष्य भी जैसा शब्द गुरु बोलता वैसाही

आप उच्चारण करता इस लिये पढ़ाना सम्प्रदानका हेतु नहीं होसक्ता ।

अच्छातो यह हेतु है

अभ्यासात् ॥६७॥

जिस का अभ्यास किया जाता वह स्थिर देखा गया जैसे पांच बार देखता है स्थिर रूप फिर फिर देखा जाता है ऐसे ही शब्द में भी अभ्यास होता दशवार वाक्य पढ़ा वीस वार पढ़ा इसलिये स्थित शब्द का वार वार उच्चारण करना ही अभ्यास है ।

नान्यत्वेप्यभ्यासस्योपचारात्॥६८॥

स्थिर न रहते भी अभ्यास का व्यवहार होता है जैसे तुम दो बार नाचो तीन वार नाचो दोवार अग्नि होत्र करता तीन बार होम करता दो वार भोजन करता इस रीति व्यभिचार आनेसे तुम्हारा हेतु ठीक नहीं क्योंकि उदाहरणों से सिद्ध होगया कि नाचना आदि क्रिया पृथक् पृथक् हैं तो भी अभ्यास का उपचार होता ऐसे ही भिन्न भिन्न शब्दों का अभ्यास होता है ।

अन्यदन्यस्मादनन्यत्वादनन्यदित्यन्यताऽभावः ॥६९॥

प्रतिषेध हेतु में जो अन्य शब्द का प्रयोग किया था उस का खंडन इस सूत्र से करते हैं कि अन्य जिस को कहते हो वह अपने साथ अनन्य होने से अन्य नहीं होसक्ता इस लिये अन्यता का अभाव हुआ इस सूत्र का तात्पर्य यह है अन्य अर्थात् भिन्न तो दूसरे का भेद इस में हो सक्ता अपने साथ तो भेद नहीं है तो अनन्य हुआ और जो अनन्य है वह अन्य हो नहीं सक्ता इसलिये अन्यत्व का अभाव सिद्ध होता है ।

तदभावे नास्त्यनन्यता तयोरितरेतरापेक्षसिद्धेः ॥ १००॥

सिद्धान्ती कहता है कि अन्यत्वका अभाव जो मानोगे तो अनन्यता भी न वनेगी क्योंकि इन दोनोंको सिद्धि परस्पर सापेक्ष है

जैसे कहाकि अनन्य तो यह समस्त पद है इस का अर्थ यह है कि अन्य नहीं वह अनन्य कहाता जो उत्तरपद अन्य न होगा तो किस का निषेध किया जायगा इसलिये अनन्य शब्द दूसरे अन्य शब्द की अपेक्षा करके सिद्ध होता है इससे जो कहाथा कि अन्यतत्व का अभाव है यह कहना यथार्थ नहीं अच्छा तो अब शब्द का नित्यत्व इस हेतु से सिद्ध करेंगे ।

विनाशकारणानुपलब्धेः ॥१०१॥

शब्दके नाशका कारण नहीं जान पड़ता इस लिये शब्द नित्यहै जो पदार्थ अनित्य होता है उसका नाश किसी कारण से होता है जैसे वस्त्र का कारण तंतुओं का संयोग जब नष्टहुआ अर्थात् डोरे अलग होगये तब वस्त्र भी नष्ट हो जाता है यदि शब्द अनित्य होता तोउसका नाश जिस कारण से होता वह जान पड़ता इसलिये शब्द नित्य है ।

अश्रवणकारणानुपलब्धेः सततश्रवणप्रसंगः॥१०२

जैसे नाश के कारण की अनुपलब्धि से नाश का अभाव सिद्ध होता वैसे ही न सुननेके कारणके अभाव से सर्वदा श्रवणका प्रसंग हो जायगा अर्थात् जब शब्दके न सुनाई पड़नेका कोई कारण देखने में नहीं आता तब इस का श्रवण सदा होना चाहिये क्योंकि शब्द तो नित्य है ।

उपलभ्यमाने चानुपलब्धेरसत्वादनपदेशः॥१०३॥

शब्दके नाश का कारण अनुमान से जाना जाता है इसलिये अनुपलब्धि नहीं होसक्ती किसी वस्तुके संयोग वा विभाग से शब्द उत्पन्न होता उससे दूसरा फिर तीसरा शब्द उत्पन्न होता है कार्य शब्द कारण शब्दका प्रतिबंधक होता और इसी प्रकार प्रति घातक द्रव्य का संयोग पिछले शब्द का रोकने वाला होता है ऐसे देखने में आता है कि भीतके आड़से पासका भी शब्द सुननहीं पड़ताऔर बीचमें रोक न रहने से दूर का भी शब्द सुन पड़ताहै घंटा के बजानेसे ऊंचेसे ऊंचा और नीचे से नीचा शब्द सुन पड़ता है सुननेके भेदसे अनेक शब्द

संतान लगा तार सुन पड़ता है यह बात नित्य शब्दमें नहीं घटती जब शब्द अनित्य माना जाता तब घंटा में स्थित शब्द सन्तान वृत्ति संयोग का सहायक अन्य संस्कार रूप तीखा और मंद होता है उसकी अनुवृत्ति से शब्द संतानकी अनुवृत्ति होती संस्कार की तीव्रता वा मन्दता से शब्द का तीखापन वा मन्दपन होता और इस कारण से सुनने में भेद होता है।

पाणिनिमित्तप्रश्लेषाच्छब्दाभावेनानुपलब्धिः ॥१०४॥

जब घंटा बजाया और उसी समय यदि उसमें हाथ लगादो तब शब्द परंपरा उत्पन्न नहीं होती इसलिये शब्द सुन नहीं पड़ता वहां प्रतिघातक द्रव्यका संयोग शब्दके दूसरे निमित्त संस्कार को रोकता ऐसा अनुमान होता है और उसके रुकने से शब्द संतान नहीं होता फिर सुनने में विच्छेद पड़ता है जैसे रोकनेवाले पदार्थके संयोग से वाण की क्रिया के कारण संस्कार के रुकजाने से वाण का गमन नहीं होता स्पर्श इंद्रिय से शब्द की कंप परंपराका ज्ञान होता है जब कांसे के पात्र में हाथ लगाओ तब संस्कार संतान प्रगट होता उससे संस्कार रूप निमित्तांतर की अनुपलब्धि नहीं होती।

बिनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसंगः॥१०५॥

जिस बस्तु के नाश का कारण न जान पड़े वह स्थिर रहती स्थिर रहने से नित्यत्व की आपत्ति होती फिर जो शब्द के श्रवण वा शब्द की अभिव्यक्ति है इनके नाशका कारण आपने सिद्ध नहीं किया फिर स्थिति और उस के होनेसे शब्द नित्य होजायगा और पिछला दोष गले पड़ेगा कि शब्दका श्रवण सदा होना चाहिये यह सूत्र प्रक्षिप्त जान पड़ता है क्योंकि इसमें कोई ऐसी बात नहीं निकलती जो पिछले सूत्रोंसे सिद्ध न हो चुकी हो इसलिये सूत्र वृत्तिकारने इस की व्याख्या नहीं की पर भाष्य में है इसलिये हमने भी अनुबाद कर दिया छोड़ा नहीं।

अस्पर्शत्वादप्रतिषेधः ॥ १०६ ॥

शब्द आकाश का गुण है इसका निषेध नहीं होसक्ता क्योंकि शब्दका आश्रय स्पर्शवान नहीं रूप रसादि गुणों के समान शब्द के आश्रय का ग्रहण नहीं होता तो शब्द परंपराकी उपपत्तिके लिये स्पर्श रहित द्रव्य शब्दका आधार है ऐसा अनुमान होता है।

बिभक्त्यन्तरोपपत्तेश्च समासे ॥ १०७॥

जो रूप रसादि और शब्द प्रत्येक द्रव्यमें इकट्ठे रहते तो उस समुदाय में जिस जातिका शब्द होगा उसी जातिके शब्दका सर्वदा श्रवण होना चाहिये जैसे रूप रस आदि गुण एक द्रव्य में एकही प्रकार के प्रतीत होतेहैं पर शब्द एक ही द्रव्यमें अनेक प्रकार का सुनने में आताहै तथा समान श्रुतिवाले एकसे कई शब्द तीव्र वा मन्द अलग अलग सुनने में आते हैं यह दोनों बात नहीं सिद्ध होंगी जब अलग अलग अनेक शब्द उत्पन्न होते तब उन का यह धर्म हो सकता है एक शब्द की अभिव्यक्ति होती तो उक्त विभाग नहीं बनता इस लिये रूप रसादि गुणों की भांति शब्द प्रत्येक द्रव्य में स्थित नहीं रहता किंतु शब्द का आधार आकाश ही है शब्द के अनित्यत्वका विचार पूरा हुआ शब्द दो प्रकारका है एक वर्णात्मक दूसरा ध्वनिरूप उनमें से वर्णात्मक के विषय में बिचार करते हैं।

बिकारादेशोपदेशात् संशयः ॥ १०८ ॥

दधिअत्र दध्यत्र यहां इकार को दूर कर उसके स्थान में यकार होजाता है ऐसा कोई मानते दूसरे कहते हैं कि संधि के विषय में इकार के स्थान में यकार का प्रयोग करना आदेश कहाता विकार और आदेश दोनों के उपदेशसे संदेह होताहै कि एक वर्णको मिटाकर उसके स्थान में दूसरा वर्ण हो जाता जैसे दूध का विकार दही ऐसे ही इकारका विकार यकार होजाता अथवा दधिअत्र इत्यादि प्रयोगों में जब मिलाकर दोनों स्वरोंके उच्चारण करने की इच्छाहो तब इकार आदिका उच्चारण न करके उसके प्रसंग में यकार आदि का उच्चारण करना इनमेंसे कौनसा उपदेश ठीक है इस बातका संदेह होताहै।

प्रकृतिविवृद्धौ विकारविवृद्धेः ॥ १०९ ॥

विकार पक्ष ठीक नहीं क्योंकि प्रकृति का अनुविधान विकारोंमें देखा जाताहै जैसे छोटे अवयवोंका विकार छोटा और बड़ोंका बड़ा होता है इसी प्रकार यहां भी प्रकृति की विधिसे विकार की वृद्धि होनी चाहिये यकार में ह्रस्व दीर्घका विधान होता नहीं ह्रस्व इकारको जैसा यकार होता दीर्घ ईकार को भी वैसाही यकार होताहै कुछ भेद देखने में नहीं आता इसलिये विकार पक्ष ठीक नहीं है ।

न्यूनसमाधिकोपलब्धेर्विकाराणामहेतुः ॥११०॥

द्रव्य के विकार न्यून सम और अधिक देखने में आते हैं ऐसेही यह विकार न्यून होगा जैसे अधिक रुई के परिमाण से छोटा सूत बड़के छोटे वीजसे बड़ा वृक्ष और केला के बड़े वीज से छोटा वृक्ष ऐसा नहीं होता कि बड़के वीज से केला का बीज बड़ा है तो बड़के वृक्ष से केलाका वृक्ष भी वड़ा हो सम का दृष्टांत यह है कि जितना सुवर्ण होगा उतनेही परिमाण का भूषण बनेगा न ऊन और न अधिक इस लिये उक्त हेतु तुम्हारे पक्षका साधक नहीं हो सकता ।

नातुल्यप्रकृतीनां विकारविकल्पात् ॥१११॥

भिन्न भिन्न प्रकृतियों के विकारों की विलक्षणता हमने कही है कुछ बीज आदिकी बड़ाई छुटाई इष्ट नहीं है अर्थात प्रकृति के भेद से विकार में भेद होता है यह भेद तुमने जो उदाहरण दिखलाये वहां भी विद्यमान है यकार प्रकृतिका अनुसरण नहीं करता इसलिये द्रव्यके विकार दृष्टांत नहीं होसकते ।

द्रव्यविकारवैषम्यवद्वर्णविकारविकल्पः ॥११२॥

द्रव्यके विकार की विषमता की नाईं वर्ण विकार की विलक्षणता होजायगी अर्थात् जैसे द्रव्यत्वरूप से समान प्रकृतियों के विकार भिन्न भिन्न होते हैं वैसेही वर्णत्वरूप से तुल्य प्रकृतियों के विकार भी विलक्षण होजायंगे ।

न विकारधर्मानुपपत्तेः ॥११३॥

विकार धर्मकी अनुपपत्ति से यकार इकार का विकार नहीं होसकता इसका आशय यह है कि सब पदार्थों में विकार का धर्म यहहै जिस प्रकार का द्रव्य होगा मिट्टी वा सोना आदि उसका स्वरूप पहिली रचना को छोड़कर दूसरे आकार को लेलेगा सब वर्णों में कोई एक शब्द का आत्मा नहीं जो इत्व को छोड़कर यत्वको लेले जैसे बैल के स्थान में घोड़ा लगादो यहां घोड़ा बैलका विकार नहीं कहासकता क्योंकि विकार का धर्म उसमें नहीं है

विकारप्राप्तानामपुनरावृत्तेः ॥११४॥

विकार भाव को जो पाते हैं उनकी फिर आवृत्ति नहीं होती पर इकार यत्व को पाकर फिर इकार होजाता है इसलिये वर्णों के विकार नहीं हैं ।

सुवर्णादीनां पुनरापत्तेरहेतुः ॥११५॥

सुवर्ण आदि द्रव्यों की फिर आवृत्ति होती है इसलिये तुम्हारा हेतु दुष्ट है जैसे सोना कुंडल रूपको छोड़ कंगन रूपको धारण कर फिर कुंडलरूपका ग्रहण कर लेता है वैसेही इकार भी यत्वको प्राप्त हो फिर इकारभाव को लेलेगा यहां विकार के विषय में दो प्रकार के दृष्टांत हैं एकतो विकारपनको पाकर फिर अपने प्रकृतरूप में नहीं आते जैसे दूधका दही बनकर फिर उसका दूध नहीं होसक्ता दूसरा जैसे सोना कुंडल बनकर फिर अपनेरूप में आजाता है सिद्धांतीने पहिला दृष्टाँत लेकर दोष दिया पूर्व पक्षी कहता है सुवर्ण का उदाहरण हमारे पक्षका साधक है अब सिद्धांती उसकाभी खंडन करता है ।

तद्विकाराणां सुवर्णभावाव्यतिरेकात् ॥११६॥

विद्यमान सोना नष्ट होनेवाले और उत्पन्न होनेवाले धर्मों से युक्त होता ऐसा कोई शब्दस्वरूप स्थिर नहीं है जो नाश होनेवाले इत्व और उत्पन्न होनेवाले यत्व से संयुक्त होसकै इसलिये सोनेका दृष्टांत उचित नहीं है ।

वर्णत्वाव्यतिरेकाद्वर्णविकाराणामप्रतिषेधः॥११७॥

फिर शंका करता है कि जैसे सुवर्ण के विकार कुंडल आदि सोनापन को नहीं छोड़ते वैसेही वर्ण के विकार भी वर्णत्वका त्याग नहीं करते हैं ।

सामान्यवतो धर्मयोगो न सामान्यस्य ॥११८॥

कुंडल मुदरी आदि सोने के धर्म हैं सुवर्णत्व के नहीं ऐसेही इकार यकार किस वर्णके धर्म होंगे यदि कहो वर्णत्व के तो ऐसा कहना कदापि संभव नहीं क्योंकि वर्णत्व तो स्वयं धर्मरूप है तब इकार यकार भला क्योंकर उसके धर्म होसक्ते हैं निवृत्त होनेवाला धर्म उत्पन्नहोनेवालेकी प्रकृति कैसे होगा जानेवाला इकार उत्पन्न होनेवाले यकार की प्रकृति कभी नहीं होसक्ता है इस हेतु से भी वर्ण विकार पक्ष ठीक नहीं है ।

नित्यत्वे विकारादनित्यत्वे चानवस्थानात् ॥१५९॥

वर्ण नित्य हैं इस पक्ष में इकार यकार ये दोनोंही वर्ण हैं तो नित्यत्व होनेसे विकार की उपपत्ति नहीं होसक्ती यदि कहो कि अनित्य हैं तो विनाशी होनेसे कौन किसका विकार होगा और अनित्य पक्ष में वर्णोंकी स्थिति नहीं रहती अर्थात इकार की उत्पत्ति होके नष्ट होजाने के पीछे यकार उत्पन्न होता इसी प्रकार यकार की उत्पत्ति और नाश के अनन्तर इकारकी उत्पत्ति होती तब कहो किसका कौन विकार होगा यह बात वहां की है जब की अवग्रह करके संधि करते वा संधि के पीछे अवग्रह करते हैं एक पदका उच्चारण करके कुछ ठहर कर दूसरे पदके उच्चारण को अवग्रह कहते वेद के पाठमें अवग्रह होता है ।

नित्यानामतीन्द्रियत्वात्तद्धर्मविकल्पाच्च वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ॥१२०॥

नित्यत्व पक्षमें शंका करने वाला समाधान करता है जैसे नित्य होकर कोई पदार्थ इंद्रिय के विषय नहीं होते जैसे आकाश आदि कोई इंद्रियों से जाने जाते जैसे गोत्व आदि इसी प्रकार कोई नित्य

पदार्थ विकार युक्त नहीं होते वर्ण तो विकारत्व को प्राप्त होते हैं अर्थात् नित्य पदार्थ सब एकही से नहीं होते किन्तु उनमें भेद रहता है तो वर्ण नित्य भी हैं और उनके स्थान में विकार होते हैं अनित्य पक्ष में भी पूर्व पक्षी समाधान करता है ।

अनवस्थायित्वे च वर्णोपलब्धिवत्तद्विकारोपपत्तिः ॥१२१॥

जैसे अस्थिर वर्णोंका श्रवण होता है वैसेही वर्णोंके विकारकी उपपत्ति होजायगी ।

विकारधर्मित्वे नित्यत्वाभावात् कालान्तरे विकारोपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ॥१२२॥

विकार धर्म होने सेनित्यत्व के अभाव से और कालांतर में विकार की उपपत्ति होनेसे प्रतिषेध नहीं होसक्ता इसका अभिप्राय यह है कि विकार धर्मवाला कोई पदार्थ नित्य देखने में नहीं आता इसी लिये वर्णोपलब्धिवत् यह प्रतिषेध युक्त नहीं क्योंकि अवग्रह में दधि अत्र ऐसा प्रयोग करके कुछ काल ठहरकर फिर संहिता में दध्यत्र ऐसा प्रयोग करते हैं तो इतने समय से निवृत्त इकारमें प्रयुक्त यकार किस का विकार प्रतीत होगा कारण के अभाव से कार्यका न होना गले पड़ेगा ।

प्रकृत्यनियमात् वर्णविकाराणाम् ॥१२३॥

प्रकृति के अनियम से वर्ण विकार की उपपत्ति नहीं होसक्ती इकार के स्थान में यकार सुना जाता और यकार के स्थान में इकार का विधान होता है यकार का उदाहरण पहिले लिख चुके हैं इकार का विध्यति यह उदाहरणहै व्यध प्रकृति है उसके यकारको इकार होता है यदि वर्णोंका प्रकृति विकृति भाव होता तो प्रकृति का नियम होता अर्थात् जिस वर्ण के स्थान में जो होता वही उसके

स्थान में हुआ करता ऐसा नहीं होता कि कहीं तो इकार के स्थान में यकार और यकार के स्थान में इकार होजाय विकार भाव में प्रकृतिका नियम देखने में आता है ।

अनियमे नियमान्नानियमः ॥१२४॥

जो यह प्रकृतिका अनियम दिखलाया वह नियत है विषय के अनुसार व्यवस्थित रहता अनियम के नियम होने से अनियम नहीं होसक्ता ।

नियमानियमविरोधादनियमे नियमाच्चाप्रतिषेधः ॥१२५॥

नियम और अनियम का परस्पर विरोध है इसलिये अनियम में नियम होने से प्रतिषेध उचित नहीं क्योंकि नियम के अभाव को अनियम कहते जब अनियम होगा तब नियम का होना असम्भव है इस प्रकार वर्णोंके प्रकृति विकारभाव का खंडन करके अपने पक्ष में वर्ण विकार की उपपत्ति करते हैं ।

गुणान्तरापत्त्युपमर्दह्रासवृद्धिलेशश्लेषेभ्यस्तु विकारोपपत्तेर्वर्णविकारः ॥१२६॥

गुणान्तरापत्ति नाम धर्मोंके विद्यमान रहते दूसरे धर्म की उत्पत्ति होना जैसे उदात्तस्वर में अनुदात्तत्व धर्मका होना उपमर्द उसे कहते कि जहां एक रूपकी निवृत्ति होकर दूसरे रूपकी उत्पत्ति होजानी जैसे असके स्थानमें भू यह आदेश ह्रास दीर्घको ह्रस्व होजाना वृद्धि ह्रस्व को दीर्घ वा इन दोनों के स्थान में प्लुत लेशका अर्थ है आगम वह प्रकृति वा प्रत्यय को होता है प्रकृतिका आगम जैसे अर्च इस प्रकृतिका आनर्च यहां नकार का आगम हुआ अर्थात प्रकृति में नकार न था वह आगया बभूविथ यहां थप्रत्यय है इसको इकार का आगम होने से इथ होगया इन्ही गुणांतरापत्ति आदि धर्मों को वि-

कार कहते और यही आदेश आगम भी कहाते हैं ।

ते विभक्त्यन्ताः पदम् ॥१२७॥

यह वर्ण यथाशास्त्रानुसार विभक्त्यंत पद कहाते हैं विभक्ति दो प्रकार की है एक नामिकी दूसरी आख्यातिकी जो संज्ञासे की जाती वह नामिकी जैसे ब्राह्मणः यहां ब्राह्मण नाम है और विसर्ग विभक्ति और जो धातु के आगे आती वह आख्यातिकी विभक्ति कहीजाती जैसे पचति यहां पच धातु से तिप्रत्यय हुआ इस वाक्य का अर्थ ब्राह्मण पकाता है इस पर शंका करते हैं कि जो विभक्त्यंतको पद कहोगे तो उपसर्ग निपात इनकी पदसंज्ञा नहोगी क्योंकि इनके अन्तमें विभक्ति नहीं रहती उपसर्ग जैसे प्रपरा अप इत्यादि निपात जैसे च वा ह अह इत्यादि इसका समाधान यह है कि इनके अन्तमें भी पहिले विभक्ति रहती है पर उसका अव्यय से परे होने के कारण लोप होजाता है नहीं तो पदसंज्ञा कैसेहो अर्थका वोध पदसे होता इसलिये पदसंज्ञा का होना आवश्यक है ।

तदर्थे व्यक्त्याकृतिजातिसन्निधाउपचारात् संशयः ॥१२८॥

गौः इसपद के अर्थ में व्यक्ति आकृति और जाति इनके सन्निधान होने से संदेह होता है कि इन तीनों में से कोई एक गोपदका अर्थ है वा सब व्यक्ति आकृति और जाति इनके लक्षण आगे लिखे जायंगे ।

या शब्दसमूहत्यागपरिग्रहसंख्यावृद्ध्यपचयवर्णसमासानुवंधानां व्यक्ताउपचारात् व्यक्तिः ॥१२९॥

पहिले जो व्यक्तिमें पदकी शक्ति मानते हैं उनका मत लिखते हैं शब्द आदिकों का व्यवहार व्यक्ति में होने से व्यक्ति पदका अर्थ है गौ खड़ी है गौ बैठी है यह वाक्य जाति के वोधक नहीं किन्तु व्यक्तिके बोधक हैं गायों का झुण्ड वेदपाठी को गाय देता है द्रव्यका दान होता

जातिका नहीं क्योंकि जाति अमूर्त्त पदार्थ है परिग्रह वस्तु के साथ सं-
बंध जैसे ब्राह्मण की गाय द्रव्यके भेद से संबंधका भेद होसक्ता है संख्या
दस गाय बीस गाय भिन्न भिन्न द्रव्य गिनी जातीं न कि जाति वृद्धि बढ़ना
गौ बढ़ती है द्रव्य के अवयव बढ़ते हैं जाति निरवयव है इसलिये
उसकी वृद्धि नहीं होसक्ती ऐसेही गौ दुर्बल होगई सफेद गाय पीली
गाय द्रव्य को वर्णका योग होता जातिको नहीं समास गोसुख गोहित
इत्यादि द्रव्यको सुख आदिका संबन्ध होता जातिको नहीं अनुबन्ध
एकरूप सन्तान उत्पन्न करना गाय गायको जनती है यह सब व्यवहार
व्यक्ति में देख पड़ते हैं इससे पदकी शक्ति व्यक्ति में सिद्ध होती है
जातिमें नहीं द्रव्य व्यक्ति यह दोनों समानार्थ शब्द हैं ।

न तदनवस्थानात् ॥१३०॥

अनवस्थित होने से व्यक्ति पदका अर्थ नहीं होसक्ती अर्थात्
व्यक्ति अनेक हैं तब किस किस में शक्ति कहोगे अनुगम नहीं होसक्ता
गाय खड़ी है गाय बैठी है इत्यादि वाक्यों से जाति को छोड़ केवल
व्यक्ति नहीं कही जाती किन्तु जाति सहित व्यक्ति इसलिये व्यक्ति
पदका अर्थ नहीं इसी प्रकार समूह आदिकों में जानलेना चाहिये जो
व्यक्ति पदका अर्थ नहीं तो उसमें व्यहार कैसे होता है इसका समा-
धान करते हैं ।

सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामी-
प्ययोगसाधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमञ्चकटराज-
सक्तुचन्दनगङ्गाशाटकान्नपुरुषेष्वतद्भावेऽपि
तदुपचारः ॥ १३१॥

सह चार आदि कारणों से तद्भाव न रहते भी व्यवहार होता है
जैसे किसी ने कहा कि लाठी को भोजन कराओ तो यहां लाठी के
संग से लाठी वाला ब्राह्मण समझा जाता जिस के पास बहुधा लाठी
रहा करती है स्थान से जैसे मंचान चिल्लाते हैं इस से मंचानो पर
बैठे पुरुषों का बोध होता है तादर्थ्य उस के लिये जैसे चटाई के लिये

रचना युक्त तृणों में चटाई बनाता यह व्यवहार होता है वृत्त दंड देने
से राजा को यम कहना अधिक द्रव्य होने से कुवेर कहना मान नापने
से जैसे सेर भर सत्तुओं को सेर सत्तू मन भर गेहूं को मन गेहूं धारण
करने से जैसे तराजू में धरे चंदन में तुलाचन्दन यह व्यवहार होता है
सामीप्य पास रहने से जैसे गंगा में गायें चरती हैं अर्थात् गंगा के पास
चरती हैं इस से गंगा के समीप का देश समझा जाता है योग से काले
रंग से रंगी हुई साड़ी काली कहाती साधन होने से जैसे प्राण के
साधन अन्न को अन्न प्राण हैऐसा कहते आधिपत्यसे जैसे यहपुरुष कुल
वा गोत्र स्वरूप है ऐसा कहने से कुल के अधिपति का ज्ञान होता है
ऐसे ही सहचार वा योग से जाति शब्द का व्यक्तियों में व्यवहार होता
है आकृति पद का शक्य है अर्थात् पद की शक्ति आकृति में है इस
मत का उपपादन करते हैं ।

आकृतिस्तदपेक्षत्वात् सत्वव्यवस्थानसि-
द्धेः ॥ १२३ ॥

प्राणियों की व्यवस्था को आकृति के आधीन होने से आकृति
पद का अर्थ है जीवों के अंग तथा प्रत्यंगों की नियत रचना को आ-
कृति कहते हैं उस के ज्ञान से प्राणियों की व्यवस्था सिद्धि होती यह
घोड़ा है वह गाय है आकृति के ज्ञान विना यह व्यवहार सिद्ध नहीं
हो सक्ता इस से सिद्ध हुआ कि जिस के ज्ञान से व्यवहार सिद्ध हो उसी
को शब्द कहेगा और वही शब्द का अर्थ है इस पक्ष का खंडन कर के
पद का अर्थ जाति है यह सिद्ध करते हैं ।

व्यक्त्याकृतियुक्तेप्यप्रसंगात् प्रोक्षणादीनां मृ
द्गवके जातिः ॥ १३३ ॥

जाति पद का अर्थ है क्योंकि व्यक्ति और आकृति से युक्त भी
मट्टी की गाय में गौ को स्नान कराओ गौ को लाओ गौ को देखो
इत्यादि व्यवहार नहीं होते जाति के न रहनेसे बोध नहीं होता
इसलिये पद की शक्ति जाति में माननी चाहिये ।

नाकृतिव्यक्त्यपेक्षत्वाज्जात्याभिव्यक्तेः ॥१३४॥

जाति पद का अर्थ नहीं होसक्ती क्योंकि जाति की अभिव्यक्ति आकृति और व्यक्ति की अपेक्षा रखती है व्यक्ति और आकृति के ज्ञान के बिना शुद्ध जाति मात्र का ज्ञान नहीं होता इसलिये जाति पदार्थ नहीं तो फिर अब पदार्थ किसे कहना चाहिये ।

व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ॥१३५॥

व्यक्ति आकृति और जाति यह सब मिलित पद का अर्थ है अर्थात् इन तीनों में पद की शक्ति है तु शब्द से प्रधान और अंग भाव के अनियम से पदार्थत्व ज्ञात होता है जब भेद की विवक्षा और विशेष का ज्ञान अभीष्ट होता तव व्यक्ति प्रधान जाति और आकृति अप्रधान जब भेद की विवक्षा नहीं और सामान्य का बोध इष्ट होता तब जाति प्रधान व्यक्ति और आकृति अंग व्यवहारमें यही देखने में आता है आकृति की प्रधानता विचारणीय है ।

व्यक्तिर्गुणविशेषाश्रयोमूर्त्तिः ॥१३६॥

व्यज्यते इति व्यक्तिः इंद्रियोंसे ग्रहण करने के योग्य गुरुता कठिनाई द्रवत्व और स्पर्श आदि विशेष गुणोंकी आश्रयरूप मूर्त्ति को व्यक्ति कहतेहैं इसीका दूसरा नाम द्रव्य है घट वस्त्र कुंडल आदि व्यक्ति हैं ।

आकृतिर्जातिलिंगाख्या ॥१३७॥

जिससे जाति और उसके लिंग प्रसिद्ध किये जायं उसे आकृति कहते जीव और उनके अंगों की नियत रचना जाति का चिन्हहै शिर और पादोंसे गाय को पहिचानते अवयवों के नियत होनेसे गोत्व प्रसिद्ध होता है ।

समानप्रसवात्मिकाजातिः ॥१३८॥

द्रव्यों के आपसमें भेद रहते भी जिससे समान बुद्धि उत्पन्न हो उसे जाति कहते जैसे घटोंका परस्पर भेद है पर घटत्व रूप से सब एक हैं इसी लिये घट घट यह एक रूपसे बोध होता है अनेक व्यक्तियोंके एक नाम पड़ने का भी यही कारण है सब घटोंका पट आदि

वस्तुओंसे इसी जातिरूप भेदक धर्मके रहने से भेद होताहै नहींतो सब एकही नाम से पुकारे जाते ।

इतिं मिश्र शालग्रामशास्त्रिविरिचितायां न्यायतत्वबोधिन्यां द्वितीयोध्यायः ॥

प्रिय पाठक वर्ग उस करुणानिधान की परमोदार कृपा से न्यायदर्शन का दूसरा अध्याय पूरा हुआ अब एक बात यहां अवश्य वक्तव्य यह है कि आज कल के नव शिक्षित लोग हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों की युक्तियों पर वे बिचारे झटपट दोष लगा बैठते हैं इसलिये कदाचित कोई महात्मा हमारे परम बिचार शील गौतम मुनि पर आक्षेप कर बैठें कि शब्द एक छोटा सा पदार्थ है उस के विचार पर इतने बहुत सूत्र लिख मारे इस के विषय में इतना लम्बा बिचार क्यों किया कि पढ़ते २ जी उकता जाय इसका उत्तर यह है इस दर्शन का नाम तर्कशास्त्र है तर्क करना इससे आता है छोटे से छोटा भी विषय क्यों न हो पर जहां तक उस पर संदेह हो सके सव को दूर कर के सिद्धाँत करै यह नहीँ कि आज कल के लोगोँ की नाईं जिस के मन में जो ठनी झट लिख ही तो मारा फिर चाहै उस से उपकार हो वा अपकार इस से कुछ प्रयोजन नहीं अपनी तान गाये जावेंगे उक्त मुनि हम को तर्क करने की रीति बतलाते हैं कि देखो शब्द एक छोटासा बिषय है पर इसी के तत्व निकालने में कितना बिचार अपेक्षित है तुमको चाहिये जब तक पूरा बाद बिबाद न करके कोई बात सिद्ध की जाय उसे कभी मत मानों जब सब प्रकार की अनुपपत्ति दूर होजाय तब निस्सन्देह उस बात को स्वीकार करलो ।

प्रमाणों की परीक्षा हो चुकी अब तीसरे अध्याय में प्रमेय की परीक्षा की जायगी वह प्रमेय आत्मा आदि है इसलिये प्रधान प्रमेय

रूप आत्मा ही की पहिले परीक्षा करनी चाहिये । क्या देह इन्द्रिय मन बुद्धि इन सबका समुदाय मात्र अर्थात् देहादि पदार्थों के समूह को ही आत्मा कहते हैं अथवा आत्मा इन सब से भिन्न ही बस्तु है व्यवहार की सिद्धि दो प्रकार से होती है इसलिये संदेह होता क्रिया और करण के कर्त्ता के साथ संवन्ध के कथन को व्यपदेश कहते हैं और वह व्यपदेश दो प्रकार का होता है अवयव से समुदाय का जैसे जड़ों से वृक्ष खड़ा है खम्भों ने घर को थांभ रक्खा है इत्यादि दूसरे से अन्य का जैसे कुल्हाड़ी से काटता दीपक से देखता है इत्यादि औरयह व्यपदेश है कि आंख से देखता मन से जानता बुद्धि से बिचार करता और शरीर से सुख दुःख भोगता है अब यहाँ यह निश्चय नहीं होता कि यह व्यपदेश किस प्रकार का है अवयव से समुदाय का वा अन्य से देहादिसमुदाय से भिन्न वस्तु का है अर्थात् आंख से देखता है यह व्यहार जड़ से वृक्ष खड़ा है इस के तुल्य है यदि ऐसा होतो देह इन्द्रिय आदि बस्तुओं का समुदाय आत्मा है इस से भिन्न बस्तु नहीं क्योंकि जड़ से वृक्ष खड़ा है यहाँ जड़ शाखा आदि बस्तुओं के समुदाय का ही बोध होता इन्हीं के समुदाय का नाम वृक्ष है और जो दीपक से देखता है इसके ऐसा आंख से देखता यह व्यवहार होतो देहादि पदार्थों से आत्मा भिन्न पदार्थ है यही सिद्ध होगा क्योंकि दृष्टांत में देखने वाला दीपक से भिन्न है पिछले पक्षको सिद्ध करते हैं ।

दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥ १ ॥

आंखसे देखता कानसे सुनता इत्यादि व्यवहार दीपक से देखता छुरी से काटता आदि व्यवहारों के समान है क्योंकि देखने और स्पर्श करने से एक विषय का ज्ञान होता है देखनेसे किसी बिषय का ज्ञान हुआ वही विषय स्पर्श से भी जाना जाता है जो वस्तु मैंने आंख से देखी थी उसी को हाथ से छूता हूं जिस स्पर्श इंद्रिय से छुआ था उसीको आंख से देखरहा हूं यह दोनों ज्ञान एक विषय और एक कर्तृक हैं न तो इनका कर्त्ता देहादिकों का समुदाय है और न इंद्रिय

इसलिये जो आंख और त्वचा से एक विषय का अनुभव करने वाला है वह देह इंद्रियादि से भिन्न आत्मा है ।

न विषयव्यवस्थानात् ॥ २ ॥

देहादि से भिन्न कोई चेतन नहीं है विषय की व्यवस्था होने में इंद्रियों के विषय नियत हैं आंख के रहते रूपका ज्ञान होता और उसके अभाव में रूपका बोध नहीं होता और यह नियम है कि जिसके विद्यमान रहते जो होता और उसके अभाव में नहीं रहता वह उसका कहा जाता है इसलिये रूपका ज्ञान नेत्र का है नेत्र रूपको देखता है यही वृत्तांत और इंद्रियों का जानलेना वह इन्द्रिय अपने अपने विषय के ग्रहण करने में चेतन हैं इन्द्रियों के भाव और अभाव से विषयोंका भाव और अभाव होता है फिर इनसे भिन्न किसी चेतन के मानने की क्या आवश्यता है ।

तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः ॥ ३ ॥

इन्द्रियों की व्यवस्थाही से आत्मा की सत्ता होने से प्रतिषेध नहीं होसक्ता जो एक इन्द्रिय सर्वज्ञ और सब विषयों का ग्राहक चेतन होता तो कौन उससे अन्य चेतनका अनुमान करसक्ता जिसलिये इंद्रियों के विषय नियत हैं इसीकारण उनसे भिन्न सर्वज्ञ सब नियमों का ज्ञाता चेतन आत्मा अनुमान किया जाता है यहां कुछ चेतन वृत्तांत का उदाहरण लिखते हैं रूपका देखने वाला पहिले अनुभव किये रस और गन्ध का अनुमान करता है ऐसेही गन्ध का ज्ञाता रूप और रस का अनुमान करता है ऐसेही अन्य विषयोंका वृत्तजानना चाहिये इससे सिद्ध हुआ कि सब नियमों का ज्ञाता कोई एक चेतन है इसलिये जो कहा था कि इन्द्रियों को चेतन मानलेंगे फिर इनसे भिन्न चेतनमानने की क्या आवश्यकता है यह बात खण्डित होगई इंद्रियों को आत्मा मानने वालों का खण्डन कर अब देहको आत्मा मानने वालों के मत का खण्डन करते हैं ।

शरीरदाहे पातकाभावात् ॥ ४ ॥

शरीर कहने से देह इंद्रिय बुद्धि वेदना का समूह समझना चाहिये जीते शरीर के जलाने वाले को प्राणिहिंसा का पाप लगता है यदि शरीर से भिन्न कोई आत्मा न मानोंगे तो पाप का अभाव हो जायगा अर्थात् उसके फल से कर्त्ता का कुछ सम्बन्ध न रहेगा क्योंकि जिस शरीर ने हिंसा की वह तो नष्ट होजायगा और उस के स्थान में दूसरा उत्पन्न होगा उसने तो हत्या की नहीं यदि कहो कि पाप का फल वह शरीर भोगेगा तो कृत हानि और अकृताभ्यागम रूप दोष गले पड़ेगा अर्थात् जिस देहादि समुदाय ने हत्या की उस को तो हत्या का फल मिला नहीं और जिस ने न की थी उस को मिला इसलिये देहादि समुदाय से भिन्न नित्य आत्मा मानना चाहिये।

तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥५॥

जो नित्य आत्मा मानता है उसके मत में भी आत्मा सहित शरीर जलाया जाता है उस के मत में भी जलाने वाले को पाप न होगा क्योंकि आत्मा नित्य है और ऐसी किसी की शक्ति नहीं जो नित्य का नाश करसके जो कहो कि आत्मा की हिंसा होती है तो आत्मा नित्य न हुआ पहिले पक्ष में हिंसा निष्फल होती और दूसरे पक्ष में हिंसा सिद्ध नहीं होती पूर्व पक्ष करने वाले का अभिप्राय यह है कि जो दोष दोनों के मत में समान है उस का देना योग्य नहीं।

न कार्याश्रयकर्तृवधात् ॥६॥

सिद्धांती कहता है कि नित्य आत्मा के बध को हम हिंसा नहीं कहते किन्तु कार्याश्रय शरीर और अपने विषय के ज्ञान हेतु इन्द्रियों के घात को हिंसा कहते हैं सुख दुःख का ज्ञान कार्य है उसके आश्रय को शरीर कहते उसकी और स्वबिषय के ग्राहक इन्द्रियों की हिंसा होती नित्य आत्मा की नहीं इसलिये उक्त दोष हमारे मत में कदापि नहीं आ सकता है।

सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात् ॥७॥

बाईं आंख से देखी बस्तु का दाहिनी आंख से प्रत्यभिज्ञान होने से देहादिकों से भिन्न आत्मा सिद्ध होता है आगे पीछे होनेवाले दो ज्ञानों के एक बिषय में मेल को प्रत्यभिज्ञान कहते जैसे अब मैं उस वस्तु को देख रहा हूं जिसे पहले देखा था यह वही पदार्थ है इन्द्रियों में चेतनता मानोगे तो प्रत्यभिज्ञान की उपपत्ति न होसकेगी क्योंकि यह नहीं होसक्ता कि देखै कोई और प्रत्यभिज्ञान किसी दूसरे ही को हो पहले देवदत्तने मोहन को कभी देखा था फिर मोहन को देखकर सोहन को यह ज्ञान हो कि यह मोहन वही मनुष्य है जिसे मैंने पहिले कभी देखा था इसलिये इंद्रियों से पृथक कोई चेतन अवश्य मानना चाहिये नहीं तो प्रत्यभिज्ञा की उपपत्ति न होसकेगी।

नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमा-
नात् ॥ ८ ॥

ऊपर जो दोष दिया वह ठीक नहीं क्योंकि चक्षु इन्द्रिय एकही है नाककी हड्डी के बीच में आजानें से दो हैं ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी तालाब के बीच में पुल बांधने से दो तालाब जान पड़ें तब बाईं आंख से देखी वस्तुका दाहिनी से प्रत्यभिज्ञान न होगा यह दोष नहीं आसक्ता है।

एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम् ॥ ९ ॥

एक आंख के नष्ट होने से दूसरेका नाश नहीं होता इसलिये नेत्र इन्द्रिय एक नहीं अन्यथा कानेको देख न पड़ना चाहिये औरयह प्रत्यक्ष है कि काना मनुष्य भलीभांति देख सक्ता है।

अवयवनाशेप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः ॥ १० ॥

अवयव के नाश होने पर भी अवयवी की उपलब्धि होने से तुम्हारा हेतु ठीक नहीं क्योंकि वृक्ष की कई एक शाखाओं के काटे जाने पर भी वृक्ष बना रहता है ऐसेही एक आंख के फूटने पर भी चक्षु इन्द्रिय बनी रहेगी।

दृष्टांतविरोधादप्रतिषेधः ॥ ११ ॥

दृष्टांत के विरोध से प्रतिषेध नहीं होसक्ता कारण द्रव्य के बि॰ भाग होने पर कार्य द्रव्य ठहर नहीं सक्ता नहीं तो नित्य होजायगा अथवा दृश्यमान अर्थ के विरोध को दृष्टांत विरोध कहते हैं मरे मनुष्य के कपाल में दो छेद स्पष्ट देख पड़ते हैं और उनके बीच में नाककी हड्डी रहती है जो एकही चक्षु होता तो उसके बीच में नाककी हड्डी कभी न रहसक्ती इससे सिद्ध हुआ कि एक वस्तु में व्यवधान नहीं होसक्ता ।

इन्द्रियान्तरविकारात् ॥ १२ ॥

किसी खट्टे फलके रूप वा गन्धके किसी इंद्रिय से ज्ञान होने पर दूसरी इंद्रिय रसना का विकार रसके स्मरण होनेसे उत्पन्न होता अर्थात रसकी उत्कृष्ट इच्छा से मुख में पानी भर आता है इंद्रियों को चेतन मानने से यह बात सिद्ध नहीं होसक्ती क्योंकि दूसरे से दृष्ट पदार्थ का अन्य को स्मरण होना अयोग्य हैं ।

न स्मृतेः स्मर्त्तव्यविषयत्वात् ॥ १३ ॥

पहिले पक्षका खण्डन प्रतिवादी करता है कि स्मृति स्मरण योग्य विषयक होती है इसलिये तुम्हारा कहना ठीक नहीं अर्थात् स्मृति-रूप धर्म निमित्त से उत्पन्न होता है और उसका कारण स्मरण योग्य विषय है उसका किया हुआ इंद्रियांतरका विकार है आत्मा का किया नहीं ।

तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

स्मृति आत्माका गुण है इसलिये इसका प्रतिषेध नहीं होसक्ता जब स्मृति आत्मा का गुण माना जाता है तभी यह सिद्ध होता कि और की देखी वस्तु का दूसरे को स्मरण नहीं होसक्ता इंद्रियों को चेतन मानोगे तो अनेक जिनके कर्ता ऐसे विषयों के ज्ञानों का प्रतिसंधान न होसकेगा जब एक चेतन अनेक विषयों का देखनेवाला भिन्न

भिन्न कारणों से पहिले अनुभव किये विषयों का स्मरण करता है यह सिद्धांत मानोगे तब अनेक विषयों के द्रष्टा को दर्शन प्रतिसंधान से स्मृति का होना सिद्ध होगा अन्यथा नहीं क्योंकि प्राणियों के सारे व्यवहार स्मृति के अधीन हैं ।

अपरिसंख्यानाच्च स्मृतिविषयस्य ॥ १५ ॥

और स्मृति विषयकी गणना न करके तुमने उक्त बात कही इसलिये ठीक नहीं परोक्ष अर्थ में इस विषय को मैंने जाना यह जो स्मृति है इसका ज्ञाता और ज्ञान युक्त विषय है केवल अर्थही नहीं इस अर्थ को मैने जाना यह अर्थ मुझसे जानागया इस विषय में मुझसे जानागया इस विषयका मुझको ज्ञान हुआ यह चार प्रकार के स्मृति विषयके बोधक तुल्यार्थक हैं निस्संदेह इन सब वाक्यों से ज्ञाता-ज्ञान और विषय जाने जाते हैं अब प्रत्यक्ष विषय में जो स्मरण होता है उस से तीन ज्ञान एक विषय में प्रतीत होते हैं उन सब ज्ञानों का कर्त्ता एक ही है उन के अनेक कर्त्ता नहीं और न वह ज्ञान बिना कर्त्ता के हैं जिस अर्थ को मैंने देखा उसी को अब देख रहा हूं इसमें दर्शन और ज्ञान दो हैं उसी को अब देखता हूं यह तीसरा ज्ञान इस प्रकार एक ही अर्थ तीन ज्ञानों से युक्त हुआ इसलिये यह स्मृति का बिषय विद्यमान ज्ञात अर्थ का प्रतिषेध किया जाता कि आत्मा नहीं यह केवल स्मरण योग्य बिषयक ही नहीं किन्तु ज्ञानों के प्रतिसन्धान के नाईं एक को सर्व विषय होने से स्मृति का प्रति सन्धान होता है एक ज्ञाता अपने ज्ञानों का विचार करता है इस विषय को जानूंगा इसको जानता हूं और इसे जाना अमुक अर्थ के जानने की इच्छा करता हुआ बहुत काल तक न जान कर फिर मैंने जाना ऐसा निश्चय करता है ऐसे ही त्रिकाल युक्त स्मरणेच्छा विशिष्ट स्मृति की भी चिन्ता करता है इस से अनुमान होता है कि देहादिकों से पृथक कोई ज्ञाता है ।

नात्मप्रतिपत्ति हेतूनां मनसि सम्भवात् ॥१६॥

देह आदि समुदाय से भिन्न आत्मा नहीं है क्योंकि आत्मा के साधक जितने हेतु हैं उनका मन में सम्भव है अर्थात् दर्शन और

स्पर्श से एक विषय का ज्ञान होना इत्यादि जो आत्मा के सिद्ध करने-वाले हेतु दिखलाये वह सब मन में घट सकते हैं क्योंकि मन सब विषयक है ।

ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ॥१७॥

ज्ञाता के ज्ञान के साधक पाये जाते हैं जैसे आंख से देखता नाक से सूंघता और त्वगिन्द्रिय से छूता है इसी प्रकार सब विषयों के मनन करने वाले का मतिसाधन सब विषयक भीतरी इंद्रिय है जिसके द्वारा आत्मा विचार करता है जब यह बात सिद्ध होगई तब तो यही ठहरा कि ज्ञाता का आत्मा यह नाम नहीं माना उसका मन यह नाम रक्खा और मन का मन यह नाम न रख कर मति साधन कहते हो तो यह केवल नाम का भेद हुआ वस्तु में विवाद नहीं और जो सब विषय का विचार करने वाला है उस के लिये सर्व विषय के विचार का साधक न मानोगे तो रूप आदि विषयों के ज्ञानसाधक भी न माने जायंगे और फिर सब इन्द्रियों का अभाव होजायगा ।

नियमश्च निरनुमानः॥१८॥

रूपादि के ज्ञान साधन इंद्रिय हैं और सर्व विषयक मति साधन नहीं इस नियम के मानने में कोई तर्क नहीं देख पड़ता और रूपादि विषयों से सुख दुःख आदि भिन्न हैं इसलिये उनके ज्ञान का साधन नेत्र आदि इन्द्रियों से पृथक कोई अवश्य मानने ही पड़ेगा जैसे आंख से गन्धका ज्ञान नहीं होता इसलिये दूसरा इंद्रिय घ्राण माना गया ऐसे ही नेत्र और घ्राण इन दोनों ही से रस का ज्ञान नहीं होता तब रसना इंद्रिय मानना ही पड़ा ऐसे ही अन्य इंद्रियों के विषय में भी जानलेना चाहिये वैसे ही आंख आदि इंद्रियों से सुख आदिकोंका ज्ञान नहींहो सकता तो दूसराइंद्रिय अवश्य मानना चाहिये एक समय अनेकज्ञानोंका न होनाही उसका साधकहै उसका प्रत्येक इंद्रिय के साथ संयोग होने से ज्ञान उत्पन्न होता और उस के संयोग न रहने से ज्ञान नहीं होता जब मनुष्य का मन कहीं अन्यत्र लगा रहता तब आंख के सामने आई वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता

यह अनुभव सिद्ध है इस में किसी का विवाद नहीं तब जो कहा था कि आत्मा के सिद्ध करने वाले जितने हेतु हैं उनका मन में संभव है यह ठीक नहीं क्योंकि जैसे नेत्रादि इंद्रिय ज्ञान के साधन हैं वैसे ही मन भी है ज्ञाता इन सब से भिन्न ही है । अब यह विचार किया जाता है कि जो देहादि से भिन्न आत्मा सिद्ध हुआ वह नित्य है वा अनित्य विद्यमान वस्तु नित्य और अनित्य दो प्रकार की होती आत्मा की विद्यमानता सिद्ध होने पर भी आत्मा नित्य अथवा अनित्य है इस संदेह की निवृत्ति नहीं हुई देह से पृथक होने के पहिले तो आत्मा का होना जिन हेतुओं से उसे सिद्धकिया उन्ही से सिद्ध होगया अब देह के नष्ट होने पर भी आत्मा विद्यमान रहता है इस पक्ष को सिद्ध करते हैं ।

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभय-शोकसम्प्रतिपत्तेः ॥ १९ ॥

उत्पन्न हुये बालक को इस जन्म के अज्ञात आनन्द भय औरशोक के कारणों से आनन्द भय और शोक देखने में आतेहैं और यह स्मरण की परम्परा से उत्पन्न होते हैं अन्यथा नहीं स्मरण की परंपरा पहिले अभ्यास के विना होही नहीं सक्ती और पहिला अभ्यास पूर्व जन्म के होने ही से होगा तब यह सिद्ध होगया कि यह आत्मा देह छूटने के अनन्तर भी रहता है नहीं तो तत्काल जन्मे हुये बालक को आनन्द आदि होने का क्या कारण कहोगे ।

पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत्तद्विकारः ॥२०॥

जैसे कमल आदि अनित्य वस्तुओं में खिलना और बन्द होना आदि विकार होते हैं वैसेही अनित्य आत्मा को भी हर्ष शोक और भय की प्राप्ति रूप विकार होसकते हैं ।

नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मक-विकाराणाम् ॥ २१ ॥

पांच भूतों से उत्पन्न पद्म आदिकों के खिलना बन्द होना आदि विकार कारणों से उत्पन्न होते बिना कारण के नहीं गर्मी शीत और वर्षा काल उक्त बिकारों के कारण हैं ऐसेही तत्काल जन्मे बालक के हर्षादिकों का कारण पहिले जन्म में अभ्यास के स्मरणकी परंपरा ही है दूसरा निमित्त नहीं होसक्ता।

प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ॥२२॥

मर कर भोजनके अभ्याससे उत्पन्न दूध की इच्छा से आत्माका नित्यत्व सिद्ध होता है जात मात्र बछड़े को दूध पीने में प्रवृत्ति से दूध की इच्छा जानी जातीहै और वह भोजनके अभ्यास विन हो नहीं सक्ती क्योंकि ऐसा देखने में आता है भूंख से विकल प्राणियों को आहार के अभ्यास से उत्पन्न स्मृति के योग से भोजन की इच्छा होती है और पूर्व शरीर के विना यह इच्छा उसी काल जन्मेको हो नहीं सक्ती इस से अनुमान होता है कि पहिले इस का शरीर था जिस में इस ने भोजन का अभ्यास किया था यह जीवात्मा मर कर प्रथम शरीर से दूसरे शरीर में आया भूख से दुखी होकर पहिले अभ्यास किये हुए आहार की स्मृति से दूध की इच्छा करता है इस से यह सिद्ध होता कि देह के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता है।

अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम्॥२३॥

जैसे लोहा अभ्यास के विना ही चुंबक के पास जाता है वैसे ही बालक भी अभ्यास के विना दूध की इच्छा करता है इसलिये उक्त हेतु से देह छूटने के पीछे आत्मा की विद्यमानता सिद्ध नहीं हो सक्ती है।

नान्यत्र प्रवृत्यभावात् ॥ २४ ॥

लोहा और चुंबक का जो दृष्टांत दिया वह ठीक नहीं है क्योंकि यदि लोहा बे कारण चुंबक की ओर जाता हो तो मट्टी का ढेला क्यों नहीं जाता इस से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि लोहे का चुंबक की ओर सरकना बे कारण नहीं क्रिया के देखने से उस के कारण का अनुमान होता है क्रियाके हेतुका नियमहै इसलिये अन्यत्र प्रवृत्ति नहीं होती बालक की भी नियत क्रिया देखने में आती और दुग्ध पीने की

इच्छा का कारण भोजनके अभ्यास से उत्पन्न स्मृतिके योग विना दूसरा हो नहीं सक्ता दृष्टांत से निमित्त की उपपत्ति होती है विना निमित्त के किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सक्ती दृष्ट इच्छा के कारणका बाधक दृष्टांत हो नहीं सक्ता इसलिये लोहे का चुंबक की ओर जाना दृष्टांत नहीं क्योंकि लोहे की भी प्रवृत्ति और स्थान में देखी नहीं जाती कभी भी लोहा ढेले की ओर सरकता देखने में नहीं आया यह नियम किस का किया हुआ है यदि कहो कि कारण के नियम का तो बालक की भी नियत विषयक इच्छा कारण के नियम से होनी चाहिये अब रह गया यह विचार कि उस का कारण आहार के अभ्यास का स्मरण वा और ही कुछ है तो इस का उत्तर यही है कि जीवों की भोजन में प्रवृत्ति आहार के अभ्यास की स्मृति से देखने में आती तो फिर जब तक दृष्ट कारण मिले तो अदृष्ट की कल्पना करनी उचित नहीं है।

बीतरागजन्मादर्शनात् ॥ २५ ॥

बीतराग पुरुष का जन्म नहीं होता इससे सिद्ध होता कि सराग पुरुष उत्पन्न होता है पूर्व अनुभव किये विषयों की चिंताही रागका कारण है और विषयों का पूर्व अनुभव दूसरे जन्म में विना शरीर के हो नहीं सक्ता यह आत्मा पहिले शरीर में भोगे विषयों का स्मरण करता उन विषयों में आसक्त होता है यह दो जन्मों का मेल है इस प्रकार प्रथम शरीर का उससे पहिले शरीर के साथ और वैसेही उसका भी उससे पहिले शरीर के साथ संवन्ध जानलेना इसी भांति चेतन आत्मा का शरीर के साथ अनादि संवन्ध है और अनादि रागकी परंपरा है इससे आत्मा का नित्यत्व सिद्ध हुआ।

सगुणद्रव्योत्पत्तिवत्तदुत्पत्तिः ॥ २६ ॥

जैसे उत्पत्ति धर्मवाले द्रव्यके गुण उसके कारणही से उत्पन्न होते वैसेही उत्पत्ति धर्मवान आत्मा की इच्छा भी किसी से प्रगट होती है जैसे वस्त्र के गुण काले पीले आदि उसके कारण सूत से उत्पन्न होते अर्थात् काले सूत से काला और पीले से पीला वस्त्र बनता है ऐसे ही आत्मा के गुण भी समझने चाहिये।

न संकल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम् ॥२७॥

सगुण द्रव्य की उत्पत्ति की भांति आत्मा के राग की उत्पत्ति कभी नहीं हो सक्ती क्योंकि रागादिकों का कारण संकल्प है विषयों के भोगने वाले प्राणियों का राग संकल्प से उत्पन्न हुआ देखने में आता हैं और संकल्प का कारण पहिले अनुभव किये विषयों का चिंतन है इससे अनुमान होता है कि जन्मे बालक का राग पहिले जन्म में अनुभव किये विषयों के बिचार से उत्पन्न हुआ है आत्मोत्पत्ति के कारण से राग की उत्पत्ति होती तो संकल्प से भिन्न राग का कारण रहते कही जाती अनित्य द्रव्य गुणों की भांति आत्मा की उत्पत्ति तथा संकल्प से भिन्न राग का कारण सिद्ध ही नहीं होता इसलिये तुम्हारा कहना अयुक्त है और यदि संकल्प से भिन्न राग का कारण कहोगे तो भी धर्म और अधर्म इन से पृथक् दूसरा क्या होगा पर ऐसा कहने से भी आत्मा का पहिले शरीरके साथ संयोग मानना ही पडेगा क्योंकि वे शरीर के धर्म वा अधर्म हो नहीं सक्ता । स्वकृत कर्म निमित्तक आत्माका शरीर सुख दुःख भोग का आधार है अब उस की परीक्षा की जाती है ।

पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ॥ २८ ॥

मनुष्य का शरीर पार्थिव अर्थात् पृथिवी का विकार है गुणांतर की उपलब्धि होने से पृथिवी गंधवाली है और शरीर में भी गंध है जो जल अग्नि आदि भूत शरीर के कारण होते तो शरीर निर्गंध होता क्योंकि जल आदि कों में गंध नहीं है किंतु जलादि से मिली हुई पृथ्वी से यह उत्पन्न हुआ है इन के मेल विन उत्पन्न नहीं हो सक्ता पांच भूतों के संयोग से शरीर बनता है क्योंकि भूतों का संयोग वियोग परस्पर विरोधी नहीं किंतु जलादि निमित्त कारण हैं जल तेज और वायु संबन्धी शरीर अन्य लोकों में हैं उन में भी और और भूतों का संयोग विद्यमान ही है ।

श्रुतिप्रामाण्याच्च ॥२९॥

वेद के प्रमाण से भी मनुष्य का शरीर पार्थिव सिद्ध होता है तेरा चक्षु सूर्य को प्राप्त होवे और शरीर पृथ्वी में मिले ऐसा वेद के मंत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है उस मंत्र में जिसका जो विकार है उसका लय उसके कारण में दिखलाया है ।

अब प्रमेय के क्रम से इंद्रियों की परीक्षा की जाती है ।

कृष्णसारे सत्युपलम्भाद्व्यतिरिच्य चोपलम्भात् संशयः ॥ ३० ॥

नेत्र की काली पुतली भौतिक है उसके ठीक रहने से रूपका ज्ञान होता और उसके विगड़ने से नहीं इंद्रिय विषय के साथ संयुक्त होकर ज्ञान कराता अन्यथा नहीं यह वात ठीक कब होगी जब इन्द्रिय व्यापक होगा और जो व्यापक हुआ तो भौतिक नहीं होसक्ता इस प्रकार दो धर्म पाये जाने से संदेह होता है । इन्द्रिय भौतिक नहीं इस बात को सिद्ध करते हैं ।

महदणुग्रहणात् ॥ ३१ ॥

वृक्ष पहाड़ आदि बड़े से बड़े पदार्थ और खसखस के दाने से लेकर छोटे से छोटे पदार्थों का आंख से ज्ञान होता है यह दो बात नेत्र के भौतिक होने में बाधक हैं क्योंकि पदार्थ जितना बड़ा होगा उतनेही प्रमाण के पदार्थ को व्याप्त करेगा यह नहीं होसक्ता कि अंगुल भर का पदार्थ बिलस्त प्रमाण वस्तु को व्याप्त कर सकै और जो भौतिक नहीं है वह विभु होने से सबका व्यापक होसक्ता है ।

रश्म्यर्थसन्निकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम् ॥३२॥

बड़े छोटे का ज्ञान आंखकी किरन और पदार्थ के संयोग विशेष से होता है जैसे दीपकी किरन और बस्तु के मेल से प्रत्यक्ष होता है नेत्र की किरन से भीत के आड़ में धरी बस्तुका ज्ञान नहीं होता इससे जान पड़ता है कि आंख की किरन का संयोग भीत के बीच में आने से प-

दार्थ के साथ न हुआ इसी लिये उसका प्रत्यक्ष नहीं हुआ जैसे दीपसे आड़में रखी हुई वस्तु का ज्ञान नहीं होता है ।

तदुपलब्धेरहेतुः ॥ ३३ ॥

उक्त पक्षका इस सूत्र से खण्डन करते हैं कि जो नेत्र में किरन होती तो दीपकी भांति देख पड़ती पर देखने में नहीं आती इससे यही सिद्ध होता है कि आंख में किरन नहीं है ।

नानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरभावहेतुः ॥ ३४ ॥

अनुमान से जो पदार्थ सिद्ध होगया उसका यदि प्रत्यक्ष से ज्ञान न भी हो तो भी अभाव नहीं होसक्ता जैसे चंद्रमा का पिछला भाग और पृथ्वीका नीचेका भाग जब अनुमानसे सिद्ध होगया तब कोई उसके अभाव को देख नहीं पड़ता केवल इतना कहकर सिद्ध नहीं करसक्ता क्योंकि जब कोई पदार्थ बीचमें आजाता है तब उसके आड़में रखे हुए पदार्थ का आंखसे प्रत्यक्ष नहीं होता आड़के होने से उस वस्तु के साथ नेत्रकी किरनका संयोग नहीं होता इसीलिये उसका प्रत्यक्ष नहीं होता अब इस अनुमान का देख नहीं पड़ता यह कहकर कोई खंडन नहीं कर सक्ता है ।

द्रव्यगुणधर्मभेदाच्चोपलब्धिनियमः ॥३५॥

द्रव्य और गुणके धर्मके भेदसे उपलब्धिका नियमहै अत्यंत सूक्ष्म अवयव जिसके अलग अलग होरहेहैं ऐसा जलरूप द्रव्य आकाशमें व्याप्त रहता जिसके कारण हेमंत और शिशिर ऋतु होतेहैं ऐसेही तेजके अति सूक्ष्म किरन वायु में भरे रहतेहैं जिससे गर्मी होती है यद्यपि वह देख नहीं पड़ते तो भी गर्मी सर्दी के होनेसे अनुमान किये जाते हैं ।

अनेकद्रव्यसमवायात् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥३६॥

अनेक द्रव्य के समवाय और रूप विशेषसे रूपका ज्ञान होताहै जहांरूप और उसके आश्रयका प्रत्यक्ष होताहै वहां विशेषरूप रहताहै जिसके रहनेसे कहीं रूपका ज्ञान होता और उसके न रहनेसे कहीं द्रव्यका ज्ञान नहीं होता यही रूपका धर्म उद्भूत कहाताहै नेत्रकी किरनमें उद्भूत रूप नहीं इसी लिये उसका प्रत्यक्ष नहीं होता तेजके धर्मका भेद देखपड़ताहै कोई तेज ऐसा होता है जिसमें उद्भूत रूप और उद्भूत स्पर्श रहता है जैसे सूर्यकी किरन प्रत्यक्षहै किसीमें उद्भूत रूप और अनुद्भूत स्पर्श होता जैसे दीपकी किरन इसकाभी उद्भूतरूप होनेसे प्रत्यक्ष होताहै कहींतो उद्भूत स्पर्श और अनुद्भूत रूप रहताहै जैसे गर्म जलमें तेजका स्पर्श तो होता परंतु रूप देख नहीं पड़ता अर्थात् जिस तेजमें रूप और स्पर्श दोनों उद्भूत रहेंगे उसके रूप और स्पर्श प्रत्यक्ष जान पड़ेंगे जिसमें उद्भूत रूप और अनुद्भूत स्पर्श होगा उसके केवल रूपका बोध होगा और स्पर्श का नहीं ऐसेही जिसमें उद्भूत स्पर्श और अनुद्भूत रूप रहेगा उसके केवल स्पर्शका ज्ञान होगा नेत्रकी किरनमें न तो उद्भूत रूप है और न उद्भूत स्पर्शही है फिर इसका प्रत्यक्ष क्योंकर होसक्ता है ।

कर्मकारितश्चेन्द्रियाणांव्यूहः पुरुषार्थतन्त्रः॥३७॥

इंद्रियोंकी रचना कर्मकारित पुरुषार्थके आधीन है नेत्रके किरन की बनावट विषयके प्रत्यक्ष होने के लिये है उसके रूप और स्पर्श का ज्ञान नहीं होताकिसी द्रव्यमें रोक होनेसे आवरण की उत्पत्ति होती सब पदार्थों की सब रचना इंद्रियके भांति कर्मकारित पुरुषार्थके आधीन है धर्मऔर अधर्म रूप कर्म चेतन के उपभोग के लिये माने गए हैं ।

अव्यभिचाराच्च प्रतीघातो भौतिकधर्मः॥३८॥

व्यभिचार न होने से प्रतीघात भूतों का धर्म है जो आड़ रहने से किसी द्रव्य में इंद्रिय की रुकावट होती वह भौतिक धर्म है अभौतिक पदार्थ प्रतीघात धर्मवाला देखने में नहीं आता अप्रतिघात तो भौतिक और अभौतिक में समान रूप से व्यभिचारी है जो प्रतिघात से इंद्रियों को भौतिक मानता है उस को अप्रतिघात के कारण इंद्रियों को अभौतिक भी मानना पड़ेगा क्योंकि काच बिल्लौर के बीच में विद्यमान

रहते भी दिया की किरन रुकती नहीं वट लोई के भीतर तेज के प्रवेश होने से वस्तु पक जाती है।

मध्यन्दिनोल्काप्रकाशानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः॥३९॥

जैसे दिन में सूर्यके प्रकाश से अभिभूत होने से नक्षत्र का प्रकाश जान नहीं पड़ता ऐसे ही ज्ञान के कारण रहते भी दूसरे निमित्त से नेत्र के किरन का ज्ञान नहीं होता और वह निमित्त पहिले बतला दिया है अब भी कहेदेते है जिस पदार्थ में उद्भूत रूप और उद्भूत स्पर्श नहीं रहते उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता।

अब इस पर कोई यह शंका करते हैं कि मट्टीके ढेलेमें भी प्रकाश है पर सूर्य के प्रकाश से तिरोहित हो जाता इस से देख नहीं पड़ता इस का उत्तर अगले सूत्र से करते हैं।

न रात्रावप्यनुपलब्धेः॥४०॥

यदि ढेले में प्रकाश होता तो रात को तो देख पड़ता पर यह रात में भी नहीं देख पड़ता इसलिये इसमें प्रकाश नहीं है।

वाह्यप्रकाशानुग्रहाद्विषयोपलब्धेरनभिव्यक्तितोऽनुपलब्धिः॥४१॥

वाहिर के प्रकाश की सहायता से नेत्र विषय का ज्ञान कराता है और उसके न रहने से ज्ञान नहीं होता कहीं प्रकाश की सहायता रहते और शीतस्पर्श का ज्ञान होते भी उस के आश्रय द्रव्य का नेत्र से ज्ञान नहीं होता क्योंकि उसमें उद्भूत रूप नहीं है जैसे वायु रूप की अनभिव्यक्ति से रूपके आधार द्रव्यकी अनुपलब्धि देखने में आतीहै।

अभिव्यक्तौ चाभिभवात्॥४२॥

जो रूप उद्भूत होता और वाहिर के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता उस का अभिभव होता और जो ऐसा नहीं उस का अभिभव नहीं होता इससे सिद्ध हुआ कि नेत्र में किरन है।

नक्तञ्चरनयनरश्मिदर्शनाच्च॥४३॥

रात में विचरने वाले विलाव सिंह आदि के आंखों में किरन अंधेरी में स्पष्ट देख पड़ते हैं इस से दूसरे जीवों के नेत्रों में भी किरन का अनुमान होता है। इंद्रिय और अर्थ के संयोग को ज्ञानका कारण माना है इस पर शंका करते हैं।

अप्राप्य ग्रहणं काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः॥४४॥

काच अभ्रक और बिल्लौर के वीच में रहते भी ज्ञान होने से इन्द्रिय विषय को प्राप्त न होकर ज्ञान के कारण हैं और इसी से यह भी सिद्ध होता कि अभौतिक हैं क्योंकि पहुंच कर काम करना भूतों का धर्म है।

न कुड्यान्तरितानुपलब्धेरप्रतिषेधः॥४५॥

जो इंद्रिय अप्राप्त होकर ज्ञान के कारण होते तो भीत के बीच में रहतेभी पदार्थ का ज्ञान होजाता और जो कहो कि इन्द्रिय पहुंच कर ज्ञान कारते तो काच आदि के वीच में रहने से ज्ञान न होना चाहिये इस का उत्तर।

अप्रतिघातात्सन्निकर्षोपपत्तिः॥४६॥

प्रतिघात न होने से संनिकर्ष की उपपत्ति होती है काच और अभरक नेत्र के किरन को रोकते नहीं इसलिये इन्द्रिय और अर्थ का संयोग होता है।

आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरेऽपि दाह्येऽविघातात्॥४७॥

इस सूत्र में अविघातात् इस पद का प्रत्येक पद के साथ संबंध कर के भाष्य में तीन वाक्य किये हैं और सब के अलग अलग उदाहरण भी दिये हैं उसी क्रम से व्याख्या लिखते हैं सूर्य की किरन घट आदिकों में रुकती नहीं इसलिये घड़ा का पानी गरम होजाता संयोग होने

से दूसरे द्रव्यके उष्ण स्पर्शका ग्रहण करता इस से शीत स्पर्श का अभिभव हो जाता है प्रकाश योग्य पदार्थ में बिल्लौर के बीच में रहते भी दीप की किरन रुकती नहीं रुकावट न होने से प्राप्त का ग्रहण हुआ भूंजने के खपड़े में रखी हुई वस्तु अग्निके तेजसे पकतीहै वहां भी रोक न होनेसे तेज पहुंचकर जलाता वे पहुंचे जला नहीं सक्ता इससे सिद्ध हुआ कि काचादि पदार्थोंसे नेत्रके किरन रुकते नहीं तब पदार्थके संयोग होनेही सेज्ञान होताहै ।

नेतरेतरधर्मप्रसंगात् ॥४८॥

परस्पर धर्मके प्रसंगसे तुम्हारा कहना ठीक नहीं अर्थात् काच अभरक की भांति भीत आदि पदार्थोंसे रोक नहीं होती अथवा भीत आदिकोंकी नाईं काच आदिकोंसे भी रोक होती ऐसा ही क्यों नहीं नियम में कुछ कारण बतलाना चाहिये ।

आदर्शोदकयोःप्रसादस्वाभाव्याद्रूपोपलब्धि वत्तदुपलब्धिः ॥४९॥

जैसे दर्पण और जलका स्वच्छस्वभाव होने से रूपका ज्ञान होताहै ऐसेही उसकी उपलब्धि होतीहै काचका यह स्वाभाविक गुणहै कि इस में नेत्रकी किरन जाकर वहांसे लौटती और मुखसे संयुक्त हो उसका ज्ञान करादेती है ऐसाही स्वभाव जलका है भीत आदिमें प्रतिबिंबके ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं इससे सिद्ध होगया कि काचादि पदार्थों से नेत्र की किरन की रोक नहीं होती और भीत आदिसे होती यह सब बात पदार्थके स्वभावपर नियत है ।

दृष्टानुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तिः ॥५०॥

प्रत्यक्ष सिद्ध वा अनुमान किये पदार्थोंके नियोग और प्रतिषेध अनुपपन्न हैं अर्थात् रूपकी नाईं गंधभी नेत्रका विषय होजाय अथवा गंधकी भांति रूपभी नेत्रका विषय न हो धूमसे जैसे आगका अनुमान होता वैसेही जलका भी क्यों नहीं होता अथवा जैसे जलका अनुमान नहीं होता वैसेही आगका भी न हो यह नहीं होसक्ता

क्योंकि जो पदार्थ जैसे हैं और जैसे उनके स्वभाव हैं वैसेही प्रमाणसे सिद्ध होते हैं यह जो तुमने बिधि और निषेध किये कि काच आदि की नाईं भीत आदिकोंसे रोक नहो वा काचादि कों से भी भीत आदिके भांति रोक होजाय वह ठीक नहीं क्योंकि यह पदार्थोंके स्वभाव प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध किये हैं उपलब्धि और अनुपलब्धि यह दोनों प्रतिघात और अप्रतिघातकी निश्चय कराने वाली हैं भीत की आड़में रखी वस्तुकी नेत्रसे उपलब्धि न होनेसे अनुमान होता कि भीत से दृष्टि का प्रतिघात होता और काच आदि पदार्थों के बीचमें रहतेभी नेत्र से प्रत्यक्ष होता इससे जानते कि काचादि पदार्थ प्रतिरोध करने वाले नहीं हैं ।

आगे इस बातका विचार होगा कि इंद्रिय एक वा अनेक हैं ।

स्थानान्यत्वे नानात्वादवयविनानात्वादवयविनानास्थानत्वाच्च संशयः ॥५१॥

बहुत पदार्थ अनेक स्थानों में देखने में आते और एक पदार्थ बहुत स्थानों में देख पड़ता इसलिये इन्द्रियों के अलग अलग स्थान होने से संदेह होता कि इन्द्रिय एक वा अनेक हैं ।

त्वगव्यतिरेकात् ॥५२॥

सब शरीर में अभाव न होने से एक त्वग् इन्द्रिय है सब इन्द्रियोंके स्थानों में त्वचा विद्यमानहै विन त्वचाके विषयों का ज्ञान नहीं होता इसलिये एक त्वग् ही इन्द्रिय है ।

नेन्द्रियान्तरार्थानुपलब्धेः ॥५३॥

इन्द्रियों के अर्थोंकी अनुपलब्धि से तुम्हारा कहना ठीक नहीं स्पर्श के ज्ञान कराने वाली त्वग् इन्द्रिय के विद्यमान रहते अंधे आदि मनुष्यों को अन्य इन्द्रियों के विषय रूपादिकों का ज्ञान नहीं होता जो स्पर्श के ग्राहकत्वक् इन्द्रिय से भिन्न दूसरा इन्द्रिय नहीं होता तो जैसे अंधे आदि मनुष्यों को स्पर्श का अनुभव होता वैसेही रूपादिकोंका ज्ञान क्यों न होता इससे सिद्ध हुआ कि एक त्वग्ही इन्द्रिय नहीं है ।

त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः ॥५४॥

जैसे त्वचाका कोई एक भाग जो आंख में रहता उसीसे धुआंका ज्ञान होता दूसरे से नहीं वैसेही त्वचा के कोई एक भाग रूपादिकों के बोधक होते उनके बिगड़ जाने से अंधे आदिकों को रूपादिका ज्ञान नहीं होता है ।

व्याहतत्वादहेतुः ॥५५॥

आपही खण्डित होने से तुम्हारा हेतु ठीक नहीं अर्थात् त्वचा के अभाव न होने से इन्द्रिय एक है यह कहकर त्वचा के किसी एक भाग से धूमके ज्ञान की नाईं उसके कोई एक भाग रूपादिकोंके बोधक होते हैं ऐसा कहा इससे यही सिद्ध होता कि विषयों के बोधक अनेक हैं उन के ठीक रहने से विषयों का ज्ञान होता और उनके बिगड़ने से विषयों का ज्ञान नहीं होता तब पहिला कहना दूसरे से खण्डित होगया ।

न युगपदर्थानुपलब्धेः ॥५६॥

एक काल में अनेक विषयों की अनुपलब्धि से इन्द्रिय एक नहीं आत्मा का मनके साथ संयोग होता और मनका इन्द्रिय के साथ और इन्द्रियका अनेक विषयों के साथ संयोग होने से एकसङ्ग अनेक ज्ञान होजाने चाहिये और यह सिद्धान्त है कि एक काल में अनेक ज्ञान होते नहीं इसलिये सर्व विषयक एक इन्द्रिय नहीं जो अनेक ज्ञानों का एक साथ होना मानोगे तो देवदत्त अन्धा और यज्ञदत्त बहिरा इत्यादि व्यवस्था ठीक न रहेगी क्योंकि जब एक संग अनेक विषयों का ज्ञान सभी को हुआ तब अंधे को रूप का ज्ञान बहिरे को शब्द का ज्ञान ऐसेही और भी गड़बड़ होजायगी ।

विप्रतिषेधाच्च न त्वगेका ॥५७॥

और विप्रतिषेध होने से एक त्वग् इन्द्रिय नहीं त्वचा से अप्राप्त रूपोंका ज्ञान होता जब इसको अप्राप्त कारी मानोगे तो स्पर्शादिकों में भी ऐसाही मानना पड़ेगा अर्थात् त्वग इंद्रिय के साथ विषय का संयोग न रहते भी स्पर्श का ज्ञान होजायगा जो कहो कि स्पर्शादिकों का ज्ञान प्राप्त होकर होता और रूपादिकों का वे प्राप्त हुए ही होता इसलिये त्वगिन्द्रिय प्राप्तकारी और अप्राप्तकारीभी है तोफिर कुछ रोक न होने से रूपमात्र का ज्ञान होजायगा चाहे वस्तु सामने धरी हो वा किसी की ओट में रखी हो और दूर तथा पास की व्यवस्था भी न रहेगी अर्थात जब यह बात ठहरी कि त्वग् इन्द्रिय बे पहुंचेही रूपका ज्ञान कराती तो दूर होने से रूपका ज्ञान नहीं होता और समीप रहने से होता है यह बात न बनेगी ।

इन्द्रिय एक है इस पक्षका खण्डन करने से अनेक इंद्रिय सिद्ध होजाते हैं फिर भी पुष्ट करने के लिये साधक हेतु दिखलाते हैं ।

इंद्रियार्थपञ्चत्वात् ॥५८॥

इन्द्रियों के प्रयोजन पांच हैं इसलिये इन्द्रिय भी पांचही हैं त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होने पर उसीसे रूपका ज्ञान नहीं होता इसलिये नेत्र इन्द्रिय मानागया स्पर्श और रूपका ज्ञान होते उन्ही दो इंद्रियों से गन्धका ज्ञान नहीं होता इसलिये घ्राण इन्द्रिय माननापड़ा स्पर्श आदि तीन विषयों का ज्ञान होनेपर उन्ही तीन इन्द्रियों से रस का बोध नहीं होसक्ता तब रसन इन्द्रिय का अनुमान हुआ ऐसेही उक्त चार इन्द्रियों से शब्दका श्रवण नहीं होसक्ता तो उसके लिये श्रवण इन्द्रिय भी माननेही पड़ी इन्द्रियों के प्रयोजन परस्पर साधनोंसे असाध्य हैं इसलिये इन्द्रिय पांच हैं ।

न तदर्थबहुत्वात् ॥५९॥

इन्द्रियों के पांच प्रयोजन होने से इन्द्रिय पांच हैं यहठीकनहीं क्योंकि उनके विषय बहुत हैं स्पर्श तीन प्रकार का शीत उष्ण और साधारण सफेद नीला पीला आदि रूप कई प्रकार का है सुगन्ध और दुर्गन्ध तथा साधारण भेद से गन्ध तीन प्रकार का है मीठा कडुआ आदि रस छ प्रकार का है वर्णरूप और ध्वनि के भेद से शब्द भिन्न भिन्न हैं इसलिये इन्द्रियों के अर्थ पांच होने से इन्द्रिय भी पांच हैं ऐसा जो मानता है उसको अर्थ बहुत होने से इन्द्रिय बहुत हैं ऐसा भी मानना पड़ेगा ।

गंधत्वाद्यव्यतिरेकाद्गन्धादीनामप्रतिषेधः ॥६०॥

गंधादिकों के गन्धत्वादि सामान्य धर्म पांचहैं उनसे व्यतिरेक नहोने से पंचत्वका निषेध नहीं होसक्ता अर्थात् जैसे शीत उष्ण और साधा· रण भेद से स्पर्श तीन प्रकार का है पर तीनों में स्पर्शत्वरूप धर्म एक ही है इसलिये स्पर्श का बोधक एक इन्द्रिय अनुमान किया जाता अ- लग अलग तीन इन्द्रिय नहीं माने जाते क्योंकि स्पर्श के जितने भेद हैं वह सब एकही साधन से सिद्ध होसक्ते हैं ऐसेही गन्धत्व से गंधोंका रूपत्व से रूपों का रसत्व से रसोंका और शब्दत्व से सब प्रकार के शब्दों का अनुगम होजाने से दूसरे साधनों की अपेक्षा नहीं रहती इसलिये अर्थों के पांच होने से पांचही इन्द्रिय सिद्ध होते हैं अधि- क नहीं।

विषयत्वाव्यतिरेकादेकत्वम् ॥६१॥

विषयत्वके व्यतिरेक न होने से एकत्व होजायगा अर्थात् जैसे सब प्रकार के स्पर्शों में स्पर्शत्वरूप धर्म के एक होने से स्पर्श इंद्रिय एकही मानागया वैसेही गंधादि सब विषयों में विषयत्वरूप धर्म के एक होने से एकही इंद्रिय क्यों नहीं मानते।

न बुद्धिलक्षणाधिष्ठानगत्याकृतिजातिपञ्च- त्वेभ्यः ॥६२॥

विषयत्व रूप सामान्य धर्म से व्यवस्थित हो ग्राहकांतर निरपेक्ष एक साधन से ग्रहण करने योग्य विषय अनुमान नहीं कियेजाते किंतु गंध आदि पांच विषय गंधत्व आदि अपने अपने सामान्य धर्मों से व्यवस्थित हो भिन्न भिन्न इंद्रियों से ग्रहण किये जाते हैं सूंघना छूना रस लेना देखना और सुनना यह पांच प्रकार के ज्ञान पांच इंद्रियों के बोधक हैं इंद्रियों के स्थान भी पांच हैं स्पर्श इंद्रिय का सब शरीर काली पुतली नेत्रका घ्राण का नाक रसन इंद्रिय का जीभ और कान का छेद श्रोत्र इंद्रियका स्थान है इसलिये इंद्रियभी पांचही होने चा- हिये गतिके भेदसेभी इंद्रियोंका भेदहै काली पुतलीमें स्थित चक्षु इं- द्रिय बाहिर निकलकर रूपवान पदार्थोंमें पहुंचताहै स्पर्शादि इंद्रियां

से विषय मिलजाते एक शब्दसे दूसरा फिर उससे तीसरा इस क्रमसे शब्दका श्रवण इंद्रियसे संयोग होता आकृति अर्थात् आकार पांच प्र- कार के हैं इससे भी इंद्रिय पांच सिद्ध होतेहैं पृथिवी आदि पंचभूत इंद्रियों के कारणहैं जब कारण पांच हैं तब उन के कार्य भी पांच ही हो ने चाहिये।

यह क्योंकर जानाकि इंद्रियोंके कारण पृथिवी आदि पंच भूतही हैं और प्रकृति नहीं इस प्रश्नका उत्तर अगले सूत्रसे करतेहैं।

भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम् ॥६३॥

वायु आदि पांच भूतोंका गुणविशेषके प्रगट करनेका नियम देख पड़ताहै इससे इंद्रिय भूतकार्यहैं यह सिद्ध होताहै जैसे वायु स्पर्शका बोधक पानी रस का पार्थिव पदार्थ गंधका बोधक है और यही नियम इंद्रियोंमें देखपड़ता इससे जानते कि पृथिवी आदि पांच भूतही इंद्रियोंके कारणहैं दूसरा नहीं।

गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृ- थिव्याः अप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्याकाश- स्योत्तरः ॥६४॥

गंध रस रूप स्पर्श और शब्द इनमें स्पर्शतक पृथिवीके गुणहैं जल तेज और वायु के पहिला छोड़कर शेषगुणहैं आकाशका पिछला गुणहै अर्थात् गंध रस रूप और स्पर्श यह चार गुण पृथिवीके हैं रस रूप और स्पर्श यह तीन गुण जलके रूप और स्पर्श दो गुण तेजके वायुका स्पर्श और आकाश का शब्द गुण है।

न सर्वगुणानुपलब्धेः ॥६५॥

यह गुणनियम ठीक नहीं क्योंकि जिस भूतके जितने गुणहैं वह सब उसके इंद्रियसे ज्ञात नहीं होते अर्थात् पृथिवी के इंद्रिय घ्राण से गंधसे लेकर स्पर्शतक पृथ्वी के गुणोंका ज्ञान नहीं होता किन्तु के- वल गंधका ज्ञान होता यही दशा औरोंमें भी जानलो।

एकैकस्यैवोत्तरगुणसद्भावादुत्तरोत्तराणां त
दनुपलब्धिः ॥६६॥

गंध आदि गुणों में से एक एक गुण क्रम से पृथ्वी आदि भूतोंका है इसलिये उन का ज्ञान नहीं होता अर्थात घ्राण इंद्रिय से रस रूप और स्पर्शका ज्ञान नहीं होता रसनेन्द्रिय से रूप और स्पर्श का और आंख से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है तो फिर अनेक गुण वाले भूत कैसे जाने जाते हैं इस का उत्तर ।

संसर्गाच्चानेकगुणग्रहणम् ॥ ६७ ॥

जलादिकों के योग से पृथ्वी में रस आदि गुणों का ग्रहण होता है ऐसे ही औरों में भी समझना चाहिये जो ऐसा है तो संयोग में नियम न होने से पृथ्वी में चार गुण जल में तीन गुण दो गुण तेज में वायु में एक गुण यह नियम न रहेगा इस का उत्तर ।

विष्टं ह्यपरं परेण ॥ ६८ ॥

पृथ्वी आदिभूतों में पूर्व पूर्व भूत उत्तर उत्तर भूत से मिला है इस लिये संयोग में अनियम नहीं है अर्थात् पृथ्वी पहिली उसमें पिछले जल तेज और वायु के गुणों का मेल होने से वह चार गुण वाली कहाई उस के पीछे जल में पिछले तेज और वायु के गुणों के संयोग से जल तीन गुण वाला कहाया यही व्यवस्था औरों की भी समझनी चाहिये ।

न पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् ॥ ६९ ॥

इस सूत्र से पिछले तीन सूत्रों का खंडन करते हैं पार्थिव पदार्थ और जल के पदार्थों के प्रत्यक्ष होने से उक्त कथन उचित नहीं अर्थात् पृथिवी संबंधी पदार्थ और जलीय पदार्थों का प्रत्यक्ष होता है और रूपके विना प्रत्यक्ष होता नहीं जो इन में रूप न मानोगे तो प्रत्यक्ष न होगा केवल तैजस वस्तु ही का प्रत्यक्ष होगा क्योंकि रूप गुण तो तेज ही का है पार्थिव पदार्थ वा जलीय पदार्थों में रूप का अभाव है जो कहो कि दूसरे भूत के रूप से इन का प्रत्यक्ष होता है तो वायु

का भी प्रत्यक्ष होना चाहिये जो कहो कि इन का तो प्रत्यक्ष होता और वायु का नहीं तो इस में प्रमाण देना चाहिये अथवा पार्थिव और जलीय पदार्थों के रसों के प्रत्यक्ष होने से पहिला कहना ठीक नहीं क्योंकि पार्थिव रस छ प्रकार का होता जल में केवल मीठारस है और यह संयोग से हो नहीं सक्ता अथवा पार्थिव और जलीय वस्तुओं के रूप के प्रत्यक्ष से तुम्हारा कहना उचित नहीं क्योंकि लाल पीला काला आदि भेद से पार्थिव रूप अनेक प्रकार का है और जलीय पदार्थ का साधारण श्वेत रूप ऐक ही प्रकार का है और यह बात एक एक गुणवाले पदार्थों में संयोग से प्राप्त नहीं होता यह उदाहरणमात्र दिखादिया आगे इसीप्रकार से न्यायभाष्य में पार्थिव और तेज के पदार्थों में स्पर्श का भेद दिखाकर उक्त बात का खण्डन किया है पर हमने विस्तार के भय से सब नहीं लिखा विचार कर देखने से प्रायः इसी प्रकार का है ।

पूर्वपूर्वगुणोत्कर्षात्तत्तत्प्रधानम् ॥७०॥

पूर्व पूर्व गुणों के उत्कर्ष से उस उसकी प्रधानता है प्रधानता क्या विषयोंका ज्ञान कराना और प्रगट होने में जो सामर्थ्य है वही गुणों का उत्कर्ष है जैसे बाहिर के चार गुण और तीन तथा दो गुण वाले पार्थिव जलीय और तैजस पदार्थ सब गुणों के प्रकाशक नहीं किन्तु गंधरस और रूप के उत्कर्ष से यथाक्रम गंध रस और रूप के बोधक हैं ऐसेही घ्राण रसना और चक्षु सब गुणों के ग्राहक नहीं हैं किंतु गंध रस और रूप के उत्कर्ष से गंध रस और रूप के बोधक हैं इसलिये प्रत्येक इंद्रियों से सब गुणों का ज्ञान नहीं होता है ।

तद्व्यवस्थानं तु भूयस्त्वात् ॥७१॥

उनकी व्यवस्था प्रकर्ष से है जैसे भिन्न भिन्न कार्य के करने में समर्थ विष औषध मणि आदि पदार्थ पुरुषों के संस्कार के अनुसार रचे गये हैं सब वस्तु सब काम के लिए नहीं ऐसेही अलग अलग विषयों के ज्ञान कराने में समर्थ घ्राण आदि इंद्रिय बनाये गये हैं न कि सब विषयों के बोधक ।

इंद्रियों से अपने गुणों का ज्ञान क्यों नहीं होता इसका उत्तर अगले सूत्र से करते हैं ॥

सगुणानामिन्द्रियभावात् ॥७२॥

घ्राण आदि इंद्रिय अपने गुणों के ग्राहक नहीं होते क्योंकि घ्राणादि इंद्रियोंको अपने अपने गुणोंके साथही इंद्रियत्व है इसलिये घ्राण इंद्रिय अपने गुण गंधकी सहायता से वाहिर के गंधका ज्ञान कराता है सहाय न रहने से अपने गुण का ग्रहण नहीं करसक्ता यही रीति दूसरी इंद्रियों में जानलेनी ।

जो कहो कि गंध सहायक होकर घ्राण का ग्राह्य भी क्यों नहीं होता इस शंका का समाधान करते हैं ।

तेनैव तस्याग्रहणाच्च ॥७३॥

उसी से उसका ज्ञान नहीं होसक्ता इसलिये इंद्रिय अपने गुणों के ग्राहक नहीं होते जो कोई पूछे कि जैसे आंख वाहिर के पदार्थ का प्रत्यक्ष कराता वैसे ही अपना प्रत्यक्ष क्यों नहीं कराता इसका उत्तर भी यही है कि सहायक नहीं है ।

न शब्दगुणोपलब्धेः ॥ ७४ ॥

इंद्रिय अपने गुणों का ग्रहण नहीं करते यह कहना ठीक नहीं क्योंकि श्रवण इंद्रिय से अपने गुण शब्द का ज्ञान होता है ।

तदुपलब्धिरितरेतरद्रव्यगुणवैधर्म्यात् ॥७५॥

परस्पर द्रव्यों के गुणों के विलक्षण स्वभाव होने से श्रवण इंद्रिय से शब्द का ज्ञान होजाता है शब्द गुण से सगुण आकाश इंद्रिय नहीं है शब्द शब्द का बोधक नहीं घ्राण आदि इंद्रियों का अपने गुणों का ग्रहण करना न तो प्रत्यक्ष से सिद्ध है और न अनुमान ही से सिद्ध होता है किन्तु श्रोत्र आकाश से शब्द का ज्ञान और आकाश का शब्द गुण अनुमान किया जाता है यहां परिशेष अनुमान समझना चाहिये उसका स्वरूप यह है कि आत्मा तो श्रोता है करण नहीं मन को श्रोत्र मानने से बहिरेपन का अभाव हो जायगा क्योंकि मन तो वहिरे के भी रह-

ता ही है पृथिवी आदि चार भूतों को घ्राणादि इंद्रिय होने में सामर्थ्य है श्रवण इंद्रिय होने में नहीं अवशेष रहा आकाश तो वही श्रोत्र है यह सिद्ध होगया ।

अर्थ और इंद्रियों की परीक्षा होगई अब बुद्धि की परीक्षा की वारी है वहां पहिले इस बात का विचार करते हैं कि बुद्धि नित्य है वा अनित्य ।

कर्माकाशसाधर्म्यात् संशयः ॥ ७६ ॥

क्रिया और आकाश के साधर्म्य से बुद्धि में सन्देह होता है अर्थात् अस्पर्शत्व रूप धर्म (छूने में नहीं आना) क्रिया में है और वह अनित्य है पर यह धर्म आकाश में भी है और वह नित्य है यह धर्म बुद्धि में भी पाया जाता तब यह सदेह उत्पन्न होता है कि बुद्धि क्रिया की नाईं अनित्य वा आकाश की भांति नित्य है वात्स्यायन मुनि ने सब देह धारियों को सुखादि जैसे अनित्य हैं वैसे बुद्धि भी अनित्य है इस बात का अनुभव है जानूंगा जानता हूं और जाना ऐसा ज्ञान होता है और उत्पत्ति विनाश के विना तीन काल की प्रसिद्धि हो नहीं सक्ती तब बुद्धि अनित्य है यह सिद्ध हो गया ऐसा कह उक्त संदेहका खंडन करदिया फिर सांख्यकार बुद्धिको नित्य मानते हैं उनके खंडनके लिये इस प्रकरणका आरंभहै यह सिद्ध किया । आगे सांख्यका मत लिखते हैं ।

विषयप्रत्यभिज्ञानात् ॥७७॥

विषयोंके प्रत्यभिज्ञानसे बुद्धि नित्य है जिस विषयको मैंने पहिले जानाथा उसीको अब जानताहूं यह जो दो ज्ञानोंका एक विषय में मेलहै उसे प्रत्यभिज्ञान कहते और यह बुद्धिकी स्थिरतामें सिद्धहोता है जो उत्पत्ति विनाशवाली अनेक बुद्धि होतीं तो प्रत्यभिज्ञानकी उपपत्ति कभी न हो सक्ती क्योंकि यह नहीं होसक्ता औरके जाने विषय का प्रत्यभिज्ञान दूसरे को हो जाय ।

साध्यसमत्वादहेतुः ॥७८॥

साध्यसमत्वसे उक्त हेतु ठीक नहीं अर्थात् जैसे बुद्धिका नित्यत्व साध्यहै वैसे ही प्रत्यभिज्ञान भी क्योंकि चेतनके धर्मकी उपपत्ति

साधनमें नहीं होसक्ती ज्ञान दर्शन उपलब्धि बोध प्रत्यय और अध्यव
साय यह सब चेतनके धर्म हैं क्योंकि चेतन जानेहुए विषय का प्रत्य
भिज्ञान करताहै इस कारणसे चेतनका नित्यत्व युक्तहै करणका चैतन्य
मानोगे तो चेतन का स्वरूप कहना पड़ेगा क्योंकि जिसका स्वरूप
नहीं कहागया ऐसा कोई आत्मा माना जा नहीं सक्ता ज्ञान तो अंतः
करण बुद्धि का धर्म मानतेहो तो चेतनका अब क्या स्वरूप कौन धर्म
और क्या तत्व कहोगे और जब ज्ञानतो बुद्धि में मान लिया तब
कहो कि यह चेतन क्या करताहै जो कहो कि चेतना करता है तो ज्ञान
से दूसरा अर्थ नहीं कहागया पुरुष चेतना करता है और बुद्धि जानती
यह भी एक ही बात हुई भेद कुछ न हुआ जो कहो कि बुद्धि ज्ञा
न करातीहै तो बहुत अच्छा इससे यही सिद्ध हुआ कि पुरुष जानता
है और बुद्धि जनाती यह सत्यहै पर ऐसा मानने से ज्ञान पुरुषका
धर्महै बुद्धिका नहीं यही सिद्ध होता है दोनों को चेतन कहोगे तो
एकका अभाव ही मानना पड़ेगा जो कहो कि जाने जिससे वह बोध
का साधन बुद्धिहै तो ऐसा कहनेसे नित्य मनही कहागया अस्तु परवि
षयके प्रत्यभिज्ञानसे मनका नित्यत्व नहीं है क्योंकि करणके भेद रहते
भी ज्ञाताके एकत्वसे प्रत्यभिज्ञान देखा जाता जैसे बांई आंखसे देखे
हुए पदार्थका दाहिनी आंखसे प्रत्यभिज्ञान होता एक दीपसे देखी व-
स्तुका दूसरे दीपसे प्रत्यभिज्ञान होता है इसलिये उक्त हेतुसे ज्ञाताका
नित्यत्व सिद्ध होता न कि बुद्धि का। जो ऐसा मानता कि
बुद्धि स्थिर है उससे बिषयानुसार वृत्ति निकलतीं और वृत्ति वृत्तिमान
से भिन्न नहीं ऐसा जो मानते उनका खण्डन अगले सूत्र से करते हैं ।

न युगपदग्रहणात् ॥७९॥

एक काल में अनेक ज्ञान न होने से उक्त कथन ठीन नहीं वृत्ति
और वृत्तिमान का भेद न मानोगे तो वृत्तिमान की स्थिति से वृत्तियों
की स्थिरता होजायगी और बिषयों के ज्ञानों के स्थिर होने से एक
काल में अनेक ज्ञान होजायंगे ।

अप्रत्यभिज्ञाने च विनाशप्रसंगः ॥८०॥

और प्रत्यभिज्ञान के नाश से अन्तःकरण का नाश मानने पड़ेगा
और उलटा मानने से अनेकत्व होजायगा इसलिये ज्ञान और ज्ञान-
वान का अभेद कदापि नहीं होसक्ता ।

क्रमवृत्तित्वादयुगपद्ग्रहणम् ॥८१॥

इंद्रियों की वृत्ति क्रमसे होती इसलिये एक समय में अनेक
ज्ञान नहीं होते अर्थात् सूक्ष्म और एक मनका संयोग इन्द्रियों के
साथ वारी वारी से होता इसलिये एकवार अनेक ज्ञान नहीं होते हैं।

अप्रत्यभिज्ञानं च विषयांतरव्यासंगात् ॥८२॥

किसी एक विषय में मन के अधिक लगजाने से दूसरे विषय का
ज्ञान नहीं होता यह बात भी वृत्ति और वृत्तिमान के भेद होने से
मनमें सिद्ध होती एकता मानने में व्यासंग निष्प्रयोजन होता है ।

न गत्यभावात् ॥८३॥

कोई कहते हैं कि अन्तःकरण विभु है उसका क्रम से इंद्रियों के
साथ संयोग होता है उसका खण्डन इस सूत्र से करते हैं कि अन्तः
करण को विभु मानोंगे तो गति के अभाव से मनके साथ इंद्रियों का
क्रम से संयोग न होने से एक समय अनेक ज्ञान नहीं होते यह बात
न बनेगी क्योंकि जब मन विभु हुआ तब इसका संयोग सब इन्द्रियों
के साथ होने से एकवार अनेक ज्ञान होने में क्यारोक होगी इसलिये
मन को विभु मानना ठीक नहीं है ।

स्फटिकान्यत्वाभिमानवत्तदन्यत्वाभिमानः ॥८४॥

जैसे स्फटिक भिन्न भिन्न रंग केपदार्थों के योग से काला पीला
आदि वर्णवाला जान पड़ता है वैसेही भिन्न भिन्न बिषयों के सम्बन्ध
से वृत्ति में अनेकत्वका अभिमान होता है वास्तव से वृत्ति एकही है ।

न हेत्वभावात् ॥८५॥

हेतुके अभाव से उक्त कथन ठीकनहीं अर्थात् जैसे फटिक में दू-
सरे पदार्थों के योग से भिन्नत्व की प्रतीति भ्रम से होती है ऐसेही
ज्ञानों में अनेकत्व भ्रम से जान पड़ता है ऐसाही क्यों गंधादि पदार्थ
जैसे अलग अलग जान पड़ते वैसेही ज्ञान भी भिन्न भिन्न हैं यही क्यों न

मान लिया जाय क्योंकि हेतु तो कोई है नहीं इसपर जो कहो कि हेतु का न होना हमारे तुमारे दोनों के मतों में तुल्य है तो हमाराही कहना ठीक क्यों नहीं इसका उत्तर यह है कि ज्ञानों का क्रम से उत्पन्न होना और नष्ट होना प्रत्यक्ष सिद्ध है इसलिये जैसे गन्धादि इंद्रिय विषय अनेक हैं वैसेही इनके ज्ञान भी अनेकही हैं।

स्फटिक में भिन्नता भ्रम से जानपड़ती इस बात को नहीं मानता क्षणिकवादी कहता है।

स्फटिकेप्यपरापरोत्पत्तेः क्षणिकत्वाद्व्यक्तीनामहेतुः ॥८६॥

व्यक्तियों के क्षणिकपन से स्फटिक में भी भिन्न भिन्न व्यक्तिउत्पन्न होने से उक्त हेतु ठीक नहीं अर्थात् जब व्यक्ति क्षणिक हैं तब स्फटिक में भी और और व्यक्ति उत्पन्न तथा नष्ट होती है इससे स्फटिक में भेदही सिद्ध होने से इसका दृष्टांत देना उचित नहीं अति सूक्ष्म काल को क्षण कहते और जो पदार्थ क्षण भर ठहरते वह क्षणिक कहाते हैं शरीरादि पदार्थों में बढ़ना और घटना नियम से देख पड़ता इससे यह बात सिद्ध होती कि पहिला शरीर नष्ट होकर दूसरा उत्पन्न होता है जो आहार किया जाता वह पचकर रसरूप होता उससे शरीर के रुधिर आदि धातु बनकर नियम से घटते बढ़ते रहते हैं बढ़ने से व्यक्तियों की उत्पत्ति और घटने से नाश होता है यही दशा सब व्यक्तियों की समझनी चाहिये।

नियमहेत्वभावात् यथादर्शनमभ्यनुज्ञा ॥८७॥

नियम हेतु के अभावसे जैसा देखपड़े वैसा मानना चाहिये अर्थात् शरीर की भांति सब व्यक्तियोंमें बढ़ना और घटना नियमसे होता यह बात न तो प्रत्यक्षसे सिद्ध होती और न कोई इसकी साधक युक्ति ही है इसलिये जहां जैसा देखपड़े वहां वैसा मानना उचित है शरीर में बढ़ना घटना नियमसे देख पड़ता इसलिये शरीर को क्षणिक मानेंगे और पत्थरको क्षणिक नहीं मानसक्ते यह नहीं होसक्ता कि नीम कड़ुआ है इसलिये सब वृक्ष कड़ुये मान लियेजांय।

नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥८८॥

उक्त सिद्धांतको ही पुष्ट करतेहैं जिन पदार्थों के उत्पत्ति और बिनाशके कारण देख पड़ें उनको क्षणिक कहना योग्य है और जिनके उत्पत्ति बिनाशके कारण जानने में नहीं आते उनको क्षणिक मानना अनुचित है।

क्षीरविनाशे कारणाउपलब्धिवद्दध्युत्पत्तिवच्च तदुपपत्तिः ॥८९॥

जैसे दूधके नाश का कारण और दहीकी उत्पत्तिका कारण जान नहीं पड़ते तोभी माने जातेहैं ऐसेही स्फटिक में भी उत्पत्ति और बिनाशके कारण मान लेने चाहिये।

इसका खंडन अगले सूत्रमें किया है।

लिङ्गतो ग्रहणान्नानुपलब्धिः ॥९०॥

चिन्हसे ज्ञान होताहै इसलिये अनुपलब्धि नहीं अर्थात् दूधका नाश और दहीकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष देख पड़ती तब उससे उसके कारणका अनुमान होताहै क्योंकि कार्यसे कारणका अनुमान होना युक्ति सिद्ध है स्फटिकादि द्रव्योंमें उत्पत्ति बिनाश प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं इस लिये उनके कारणोंका अनुमान नहीं हो सक्ता।

न पयसः परिणामगुणान्तरप्रादुर्भावात् ॥९१॥

बौद्धके मत पर सांख्यका सिद्धांत लेकर शंका करते हैं दूधके परिणाम अन्य गुणोंके प्रादुर्भाव होने से तुम्हारा कहना ठीक नहीं इसका अभिप्राय यह है कि द्रव्यमें भिन्न भिन्न गुण प्रगट होते और छिप जाते हैं द्रव्य सत् है उसके उत्पत्ति बिनाश कभी नहीं होते हैं इस लिये कोई पदार्थ क्षणिक नहीं है।

व्यूहान्तराद्द्रव्यान्तरोत्पत्तिदर्शनं पूर्वद्रव्यनिवृत्तेरनुमानम् ॥९२॥

रचनान्तरसे दूसरे द्रव्यकी उत्पत्ति देखनेसे पहिले द्रव्यकी निवृत्तिका अनुमान होताहै अर्थात् अवयवोंकी विशेष रचनासे द्रव्यांतर

दहीके उत्पन्न होने पर पहिला द्रव्य दूध अवयवोंके विभाग होनेसे नष्ट होगया ऐसा अनुमान किया जाताहै जैसे मट्टीके अवयवों में विशेष रचना से दूसरा पदार्थ घट उत्पन्न होता और मट्टीका पिंड अवयवोंके विभाग नष्ट होनेसे नष्टहोजाताहै सिद्धांत यह कि पहिले द्रव्य का नाश और अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति होती है ॥

क्वचिद्विनाशकारणानुपलब्धेः क्वचिच्चोपलब्धेर नेकान्तः ॥ ९३॥

कहीं विनाशके कारणकी अनुपलब्धिसे और कहीं उपलब्धि से अनेकांत होता है स्फटिकादि पदार्थोंमें उत्पत्ति बिनाश दूध दही के उत्पत्ति बिनाशके समान वे कारणहै यह बात हेतुके न होनेसे नियत नहीं है दूधका नाश और दही की उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखपड़ती और स्फटिक आदिके नाश तथा उत्पत्ति देखनेमें नहीं आते दूधके नाशका और दही की उत्पत्तिका कारण अनुमान प्रमाणसे जाना जायगा क्योंकि कार्यसे कारणका अनुमान होता ही है इसप्रकार उत्पत्ति बिनाश वाली होनेसे बुद्धि अनित्य है यह सिद्ध होगया अब आगे इसबातका विचार होगा कि बुद्धि किसका गुण है ।

नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानात् ॥९४॥

इंद्रिय और विषय के नष्ट होने पर भी ज्ञान बनारहताहै इस लिये ज्ञान इंद्रिय और बिषयका गुण नहीं होसक्ता क्योंकि चक्षु इंद्रिय उसका दृष्ट विषय यह दोनोंही जब नहीं रहते तब भी मैने देखा ऐसा ज्ञान होताहै जो इंद्रिय और विषयका गुण होता तो उनके अभावमें ज्ञानभी न होना चाहिये अच्छा तो ज्ञान मनहीका गुण क्यों नहीं ? इस शंका का उत्तर अगले सूत्र से करतेहैं ।

युगपज्ज्ञेयानुपपत्तेश्च न मनसः॥९५॥

एक समयमें अनेक ज्ञान उत्पन्न न होनेसे ज्ञान मनका भी गुण नहीं होसक्ता तो फिर किस का गुण है स्वतंत्र आत्मा का आत्मा स्वाधीन है और करण उस के अधीन है प्राण इंद्रियादि साधनों से गंधादि विषयों का ज्ञान आत्मा को होता है इस से अनुमान होता कि अंतःकरण रूप साधन से सुखादिकों का अनुभव और स्मरण आत्मा को होते हैं जिस का ज्ञान गुण है वह आत्मा और जो सुखादि ज्ञान का साधन अंतःकरण है उसी को मन कहते नाम मात्र का भेद है अर्थ में भेद नहीं जो मन को व्यापक मानो तो उस का सब इंद्रियों के साथ संयोग होने से एक काल में अनेक ज्ञान हो जायगे ।

तदात्मगुणत्वेऽपितुल्यम् ॥ ९६ ॥

ज्ञान को आत्मा का गुण माने तो भी दोष तुल्य है क्योंकि आत्मा को व्यापक होने से सब इंद्रियों के साथ संयोग है तो एक काल में अनेक ज्ञान क्यों नहीं होते हैं।

इंद्रियैर्मनसः सन्निकर्षाभावात्तदनुत्पत्तिः ॥९७॥

इंद्रिय और मन का संयोग न होने से एक काल में अनेक ज्ञान नहीं होते अर्थात् जैसे गंध आदि विषयों के ज्ञान में इंद्रिय और विषय के संयोग की अपेक्षा है वैसे ही इंद्रिय और मन का योग भी विषय के ज्ञान में हेतु है मन सूक्ष्म है इसलिये एक साथ संयोग न होने से एक संग अनेक ज्ञानों का होना असंभव है ।

नोत्पत्तिकारणानपदेशात् ॥ ९८ ॥

उत्पत्ति का कारण नहीं कहा गया इसलिये बुद्धि आत्मा का गुण नहीं हो सक्ती और बुद्धि को आत्मा का गुण मानने में दोष भी होगा।

विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसंगः ॥ ९९ ॥

विनाश के कारण की अनुपलब्धि से बुद्धि की सर्वदा स्थिति रहेगी और फिर बुद्धि का नित्यत्व मानने पड़ेगा क्योंकि गुण के नाश का कारण दो प्रकार का देखने में आता है एक तो उस के आश्रय का अभाव और दूसरा विरोधी गुण आत्मा नित्य है इसलिये उसका नाश न होने से बुद्धि के आश्रय का अभाव नहीं कहसक्ते रहा विरोधी गुण सो बुद्धि का विरोधी दूसरा गुण कोई देखने में नहीं आता इसलिये

बुद्धि को जो आत्मा का गुण मानोगे तो उस को नित्य मानना पड़ेगा।

अनित्यत्वग्रहाद्बुद्धेर्बुद्ध्यन्तराद्विनाशः शब्द-

वत् ॥१००॥

बुद्धि अनित्य है इस बातका प्रत्येक को अनुभव है अर्थात ज्ञान उत्पन्न और नष्ट होतेहैं तब उसके विनाश का कारण दूसरा ज्ञान ही है जैसे शब्दकी परंपरा में पहिले शब्द का दूसरा शब्द नाशक होता है।

बुद्धिको आत्मा का गुण मानने से एक काल में अनेक स्मरण हो जानेका दोष आताहै क्योंकि स्मरणके साधन ज्ञानकृत अनेक संस्कार आत्मामें विद्यमान हैं दूसरा स्मृतिका कारण आत्मा और मनका संयोग है सोभी वर्त्तमान है तब कारणों का एक कालमें न होना यह तो कह सक्ते ही नहीं तो फिर एक साथ अनेक स्मरणों को कौन रोक सकेगा इसपर आत्मा और मन के संयोगको एक काल में न होने का उपपादन करने वाला कोई कहता है।

ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृ

त्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ॥१०१॥

ज्ञानके साधन संस्कार को भी ज्ञान कहते ज्ञानसमवेत आत्मा के प्रदेशोंके साथ मनका संयोग वारी वारी से होता है इसलिये आत्मा और मनके संबंध से स्मरण भी क्रमही से हुआ करते हैं इसका आशय यह है कि आत्मातो व्यापक है और मन सूक्ष्म है तो जिस स्थान में संस्कार युक्त आत्मा है उस स्थान में मनके संयोग होनेसे स्मरण होता और जिस स्मृतिका हेतु संस्कार युक्त आत्म प्रदेश होगा उस प्रदेशमें मनके संयोग होने से वही स्मरण होगा इसलिये एक साथ अनेक स्मरण उत्पन्न नहीं होते हैं।

नान्तःशरीरवृत्तित्वान्मनसः ॥१०२॥

मनकी क्रिया शरीर के भीतर होती इसलिये उक्त बात ठीक नहीं है शरीर के भीतर विद्यमान मनका शरीर के वाहर वर्त्तमान ज्ञानसंस्कृत आत्मप्रदेशोंके साथ संयोग हो नहीं सक्ता है।

साध्यत्वादहेतुः ॥१०३॥

साध्यत्व होनेसे हेतु नहीं होसक्ता अर्थात् जब तक मनका देहके भीतर रहना सिद्ध न हो जाय तब तक वह हेतु कैसे होसक्ता है।

स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ॥ १०४॥

स्मरण करने वाले का शरीर धारण सिद्ध है इसलिये प्रतिषेध नहीं हो सक्ता इसका आशय यह है कि यह आत्मा स्मरण की इच्छा से मनको एकाग्र कर विलंब से भी किसी विषय का स्मरण करता है उस समय उसका शरीर ठहरा हुआ देख पड़ता है आत्मा और मन के संयोग से उत्पन्न प्रयत्न दो प्रकार का है एक धारक और दूसरा प्रेरक जब मन शरीर के वाहिर निकला तब धारक प्रयत्न के न होने से गुरुता के कारण स्मरण करने वाले का शरीर पड़जाना चाहिये।

न तदाशुगतित्वान्मनसः ॥ १०५॥

मन की शीघ्र गति होने से उक्त दोष नहीं आसक्ता मन शीघ्र गति के कारण वाहिर ज्ञान संस्कृत आत्मा के प्रदेश में मिल कर फिर झट लौटकर धारक प्रयत्नको उत्पन्न करदेगा वा धारक प्रयत्न को उत्पन्न कर शरीर से निकलेगा इससे शरीर धारण की उपपत्ति होजायगी।

न स्मरणकालानियमात् ॥ १०६ ॥

स्मरण काल के नियत न होने से तुम्हारा कहना उचित नहीं कभी शीघ्र स्मरण होता और कभी विलंब से जब विलंब से किसी वस्तु का स्मरण होता तब स्मरण की इच्छा से मन का एक विषय में चिंतन लगातार किया जाता जो कि विषय किसीवस्तुके स्मरण में कारणहै और यह बात मन के चिर काल तक बाहर रहने से नहीं बन सक्ती क्योंकि भोग का स्थान शरीर है इसलिये शरीर के संयोग की अपेक्षा न रखकर आत्मा और मनका संयोग स्मृति का कारण नहीं हो सक्ता।

आत्मप्रेरणयदृच्छाज्ञताभिश्च न संयो-

गविशेषः ॥ १०७ ॥

आत्मा की प्रेरणा से वा दैव संयोग से अथवा ज्ञानिता से संयोग विशेष नहीं होसक्ता क्योंकि जो आत्मा अमुक विषय के स्मरण कारण संस्कार अमुक प्रदेश में है उस के साथ मनका संयोग हो इस इच्छा से मनको प्रेरणा करे तो वह अर्थ स्मृत होगया स्मरण के योग्य न रहा यह आत्मा स्मृतिकी इच्छासे मन को एकाग्र कर बिलंबसे भी किसी विषयका स्मरण करताहै अकस्मात् नहीं ।

व्यासक्तमनसः पादव्यथनेन संयोगविशेषेण

समानम् ॥१०८॥

जब कभी मनुष्यका मन किसी विषय में लगरहाहै उसी समय अकस्मात् पैरमें कङ्कड़ी वा कांटा चुभगया तो पैर में पीड़ा होतीहै तब आत्मा और मनका संयोग विशेष मानना पड़ेगा क्योंकि दुःखका ज्ञान होता है वहां यह निषेध समानहै जो भोगके लिये प्रारब्ध कर्मको मनमें क्रिया का हेतु मानोगे तो स्मरण में भी संयोग विशेष होना चाहिये । अच्छा तो फिर उस शंका का क्या समाधान है जो कई एक कारण एक साथ रहते अनेक स्मृति क्यों नहीं होती हैं ।

प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावाद्

युगपदस्मरणम् ॥१०९॥

जैसे आत्मा और मन का संयोग तथा संस्कार स्मृति के कारण हैं वैसे ही चित्त की एकाग्रता और लिङ्ग आदि के ज्ञान भी कारण हैं और वह सब एक साथ नहीं होते इसलिये एक काल में अनेक स्मृति उत्पन्न नहीं होती हैं ।

प्रातिभवत्तु प्रणिधानाद्यनपेक्षे स्मार्त्ते यौगप-

द्यप्रसंगः ॥११०॥

मन की एकाग्रता आदि की अपेक्षा न कर के प्रातिभज्ञान की नाईं स्मरण होता ऐसा मानने से उसकी हेतु के अभाव से युगपत् उत्पत्ति होजायगी स्मृति हेतु के विद्यमान रहते भी ज्ञान न होने से प्रातिभ के समान मान लिया अनेक विषयों में लगातार सोचने से कोई एक अर्थ किसी के स्मरण का हेतु होता है जिसके बिचार से उसकी स्मृति होती पर स्मरण कर्त्ता को स्मृति के सब कारणों का ज्ञान नहीं रहता क्योंकि इस प्रकार मुझको स्मरण हुआ यह ज्ञान नहीं होता यह स्मरण प्रातिभ के तुल्य कहाता है बुद्धि की फुरती से जो ज्ञान अति शीघ्र होता उसे प्रातिभज्ञान कहते बुद्धि की फुरती को प्रतिभा कहते उस से जो उत्पन्न हो उस का नाम प्रातिभ है ।

अब अगले सूत्र से जो लोग ज्ञान पुरुष का धर्म है और इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख और दुःख यह अन्तःकरण के धर्म हैं ऐसा मानते उन का खण्डन करते हैं ।

ज्ञस्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारंभनिवृत्त्योः॥१११॥

ज्ञाता के आरम्भ और निवृत्ति के कारण इच्छा और द्वेष हैं इसलिये इच्छा द्वेष आदि आत्मा के धर्म हैं इसका भावार्थ यह है कि पहिले आत्मा इस बात को जानता है कि यह मेरे सुख का साधन और यह दुःख का कारण है फिर सुख के साधन के पाने की और दुःख के कारण के छोड़ने की इच्छा करता है इच्छा से सुख के साधन की प्राप्ति के लिये यत्न करता और छोड़ने की इच्छा से दुःख के कारण से निवृत्त होता है इस प्रकार ज्ञान इच्छा यत्न सुख और दुःख इन का एक के साथ सम्बन्धहै अर्थात् ज्ञानेच्छादिका कर्त्ता और आश्रय एक ही है इसलिये इच्छा आदि धर्म चेतन आत्मा ही के हैं अचेतन अन्तःकरण के नहीं ।

इस पर भूतचेतन वादी शंका करता है ।

तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रति-

षेधः ॥११२॥

इच्छा और द्वेष आरम्भ और निवृत्ति के हेतु हैं तो जिस के आरम्भ और निवृत्ति हों उसी के इच्छा और द्वेष भी होने चाहिये

फिर जिन को इच्छा द्वेष होंगे उस को ज्ञान भी होना आवश्यक है पार्थिव जलीय तैजस और वायवीय शरीरों की आरम्भ और निवृत्ति देखने में आती हैं इसलिये इच्छा द्वेष ज्ञान सब शरीर ही के धर्म हैं ।

परश्वादिष्वारंभनिवृत्तिदर्शनात् ॥११३॥

यदि आरम्भ और निवृत्ति के देखने से इच्छा द्वेष और ज्ञान से सम्बन्ध होने से शरीर को चेतन मानो तो कुठारी आदि कारणों की भी आरंभ और निवृत्ति देखने में आती हैं उनको भी इच्छा द्वेष तथा ज्ञान के संबंध से चेतनता होनी चाहिये अर्थात् क्रिया के देखने से यदि शरीर में चेतनता मानोगे तो अचेतन कुठार आदि पदार्थों में भी चेतनता माननी पड़ेगी इसलिये उक्त हेतु ठीक नहीं ।

कुम्भादिष्वनुपलब्धेरहेतुः ॥ ११४ ॥

कुंभादिकों में उपलब्धि न होने से उक्त हेतु ठीक नहीं सारांश यह कि मृत्तिका के घटादि अवयवों में आरंभ और रेत आदिकों में निवृत्ति देख पड़ती पर आरंभ और निवृत्ति के देखने से मृत्तिका और रेत में इच्छा द्वेष प्रयत्न और ज्ञान का संबंध नहीं हो सक्ता है ।

नियमानियमौ तु तद्विशेषकौ ॥ ११५ ॥

इच्छा और द्वेष के भेदक नियम और अनियम हैं आत्मा की इच्छा द्वेष निमित्तक प्रवृत्ति और निवृत्ति स्वाश्रय नहीं किंतु उनका आश्रय शरीर है प्रेरित भूतों में प्रवृत्ति और निवृत्ति होती सबों में नहीं इस प्रकार अनियम की उपपत्ति होती और जिस के ज्ञान से इच्छा द्वेष निमित्तक भूतों की आरंभ निवृत्ति स्वाश्रय हैं उसका नियम हो जैसे गुणान्तर निमित्तक प्रवृत्ति और गुण के रोक से निवृत्ति सबभूतों में नियम से होतीं ऐसे ही सब भूतों में ज्ञान इच्छा और द्वेष निमित्तक प्रवृत्ति निवृत्ति स्वाश्रय होजायंगी इससे यह सिद्ध होगया कि ज्ञान इच्छा द्वेष और प्रयत्न आत्मा के आश्रित हैं और प्रवृत्ति निवृत्ति प्रयोज्य के आश्रित हैं ।

यथोक्तहेतुत्वात्पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न मनसः ॥ ११६ ॥

उक्त हेतु पारतंत्र्य और अकृताभ्यागम से चेतनता मन का गुण नहीं इस सूत्र में मन उपलक्षण है इंद्रिय और शरीर का भी चैतन्य गुण नहीं है इच्छा द्वेष यत्न आदि आत्मा के साधक हैं यहां से लेकर जो जो आत्मा के सिद्ध कराने वाले हेतु कहे हैं वह सब समझ लेने चाहिये भूत इंद्रिय और मन यह सब पराधीन हैं धारण आदि कामों में यत्न वश प्रवृत्त होते हैं यदि चेतनता इनका धर्म माना जाय तो यह स्वतंत्र होजांय अकृतका अभ्यागम अर्थात् करे कोई और भोगना दूसरे को पड़े जो भूत इंद्रिय और मन को चेतन माने तो अच्छे बुरे कामों के कर्त्ता तो यह सब ठहरे और भोगने वाला आत्मा हो यह अयोग्य है और जब इन सब को चेतन आत्मा के साधन मानते हैं तब आत्मा को अपने किये कर्मोंका फल भोगना उचितही है क्योंकि भूत इंद्रिय और मन जड़ हैं पाप पुण्य करने में आत्मा के साधन मात्र हैं ।

परिशेषाद्यथोक्तहेतूपपत्तेश्च ॥ ११७ ॥

परिशेष और उक्त हेतुओं की उपपत्ति से ज्ञान आत्मा का गुण है प्रसक्त में प्रतिषेध होने से और अन्यत्र प्रसंग न होने से शिष्यमाण में ज्ञान होने का नाम परिशेष है जैसे किसी ने कहा कि देवदत्त बाईं आंख से नहीं देख सक्ता तो इस से यही सिद्ध होगा कि दाहिनी से देख सक्ता है जब भूत इंद्रिय और मन का निषेध होगया तब दूसरा द्रव्य तो रहा नहीं केवल आत्मा शेष रहा तो ज्ञान गुण आत्मा ही का सिद्ध हुआ देखने और छूने से एक ही विषय के ज्ञान होने से इत्यादि जो पहिले हेतु कहे गये उनकी उपपत्ति से भी ज्ञानादि गुण आत्मा ही के समझने चाहिये अथवा उपपत्ति से यह दूसरा ही हेतु सूत्रकार ने अलग कहा है निश्चय यह आत्मा नित्य है क्योंकि एक शरीर में धर्म कर के उसको छोड़ स्वर्ग में देव शरीर पाकर सुख भोगता है और अधर्म कर के दूसरे देह से नरक भोगता है यह शरीरान्तर प्राप्तिरूप उपपत्ति आत्मा के नित्यत्व से सिद्ध होती यदि जिन आत्मा

के बुद्धि के प्रबन्ध मात्र से ही काम चल जाता तो यह बात न बनती और एक जीव को अनेक देह का संयोग रूप संसार तथा शरीर प्रबंध का उच्छेद अर्थात् फिर देह का संबंध न होना जिसे मुक्ति कहते यह भी सब सिद्ध हो सक्ता है बुद्धि परंपरा मात्र मानने से संसार वा मुक्ति आदि व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकते हैं ।

स्मरणं त्वात्मनोज्ञस्वाभाव्यात् ॥ ११८ ॥

ज्ञाता के स्वाभाविकपन से स्मरण आत्मा ही का गुण है बुद्धि संतानका नहीं यह आत्मा जानेगा जानता है और इसने जाना इस प्रकार त्रिकालविषक अनेक ज्ञानों से युक्त होता और यह त्रिकाल विषयक ज्ञान प्रत्येक के अनुभव से सिद्ध है ।

स्मृति के कारण एक समय नहीं रहते इसलिये एक काल में अनेक स्मरण नहीं होते यह पहिले कह चुके हैं अब जिन जिन कारणों से स्मरण होता उन्हे लिखते हैं ।

प्रणिधाननिवन्धाभ्यासलिङ्गलक्षणसादृश्यपरिग्रहाश्रयाश्रितसम्वन्धानन्तर्यवियोगैककार्यविरोधातिशयप्राप्तिव्यवधानसुखदुःखेच्छाद्वेषभयार्थित्वक्रियारागधर्माधर्मनिमित्तेभ्यः॥११९॥

स्मरण की इच्छा से मन को एक स्थान में लगाने का नाम प्रणिधान है जिस के स्मरण की इच्छा हो उस के लिंग की चिंता उस वस्तु के स्मरण का कारण होती है एक ग्रंथ में अनेक विषयों के संबंध को निबंध कहते हैं एकग्रंथ में निबद्ध अनेक अर्थ परस्पर स्मरण के कारण होते हैं अर्थात् एक अर्थ का ज्ञान दूसरे अर्थ की स्मृति का निमित्त होता एक विषय में बार बार ज्ञान के होने से संस्कार उत्पन्न होता उसी को अभ्यास कहते यह भी स्मरण का कारण है चौथा लिंग स्मरण का हेतु है जैसे धुआं के देखने से अग्नि का स्मरण होता लक्षण अर्थात् चिन्ह पशु के अंग में रहने से गोत्र के स्मरण का हेतु होता जिसके होने से यह बिद के वंश का और वह गर्ग गोत्र वालों का है

ऐसा स्मरण होता है सादृश्य अर्थात् समानता जैसे चित्र से जिस का वह चित्र है उस का स्मरण होता परिग्रहस्व स्वामिभाव जैसे सेवक के देखने से स्वामी का वा स्वामी के दर्शन से सेवक का स्मरण हो जाता आश्रय और आश्रित यह दोनों एक दूसरे के स्मारक होते हैं संबंध गुरु शिष्यभाव आदि गुरु के दर्शन से शिष्य का और शिष्य के देखने से गुरु का स्मरण होता है आनंतर्य्य जैसे एक कार्य के अनंतर जब दूसरा कार्य प्रायः किया जाता है तब एक कार्य के करने वा सुनने से दूसरे का स्मरण होता है वियोग से स्त्री पुत्र आदि प्रियजनों का स्मरण आता एक कार्य से स्मरण होता जैसे एक काम के करने वाले यदि अनेक हों तो उन में से एक के देखने से औरों का स्मरण होजाता है विरोध से भी स्मरण होता जिनका आपस में विरोध है उनमें से एकके दर्शनादिसे दूसरेका स्मरण होजाता विशेष संस्कार यज्ञोपवीत आदिसे आचार्य आदिका स्मरण होता प्राप्ति धनादिकोंके दाताका स्मरण करातीहै व्यवधान अर्थात् आवरण जैसे म्यानके देखने से खड्गका स्मरण सुख और दुःखसे इनके कारण का स्मरण होता इच्छा और द्वेष से जिसकी इच्छा वा जिसके साथ वैर होता उनकी स्मृति होती भयसे जिससे डरता उसका स्मरण होता अर्थीपनसे दाताका स्मरण करता क्रिया रथादि क्रियासे उसके बनाने वालेका स्मरण होता राग अर्थात् प्रेम से जिसपर प्रेमहोता उसका अधिक स्मरण करता धर्म और अधर्म से दूसरे जन्ममें भोगे सुख वा दुख तथा उनके कारणों का स्मरण होता है यह प्रणिधान आदि सत्ताईस उदाहरण हैं कुछ स्मरण के कारणों की गिनती नहीं है ।

बुद्धि क्या शब्द की भांति उत्पत्ति विनाश वाली है अथवा घटादिकों की नाईं कालान्तर में ठहरने वाली है इन दो पक्षों में से पहिला पक्ष सिद्ध करते हैं ।

कर्म्मानवस्थायिग्रहणात् ॥ १२० ॥

अनवस्थायी कर्म के ग्रहण करने से बुद्धि उत्पत्ति और विनाश वाली है फेके हुए बाण के गिरने तक अनेक क्रियां देखने में आती हैं

प्रत्येक अर्थ के लिये बुद्धि नियत है जैसे घाण में अनेक क्रियां होतीं वैसे ही उनके ज्ञान भी अनेक होते हैं जब घट सामने धरा है तब परंपरा से बुद्धि विद्यमान रहती और जब आड़ होजाती तब प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं रहता यदि ज्ञान कालांतर में भी बना रहता तो आड़ होने पर भी प्रत्यक्ष बना रहता।

बुद्ध्यवस्थानात् प्रत्यक्षत्वे स्मृत्यभावः ॥१२१॥

जब तक ज्ञान बना रहता है तब तक ज्ञान योग्य पदार्थ का प्रत्यक्ष होता और जब प्रत्यक्ष विद्यमान है तब स्मरण हो नहीं सक्ता।

अव्यक्तगृहणमनवस्थायित्वात् विद्यु-त्सम्पाते रूपाव्यक्तगृहणवत् ॥ १२२ ॥

जो बुद्धि उत्पन्न होकर नष्ट होजाती ऐसा मानोगे तो ज्ञान योग्य विषय का अस्पष्ट ज्ञान होगा जैसे बिजली के पड़ने के समय उसके प्रकाश की अस्थिरता के कारण रूप का ज्ञान स्पष्ट नहीं होता और पदार्थों का ज्ञान तो स्पष्ट होता है इसलियेउक्त कथन अयुक्त है।

हेतूपादानात् प्रतिषेध्दव्याभ्यनुज्ञा ॥ १२३ ॥

हेतु के उपादान से प्रतिषेध योग्य वस्तु का अंगीकार होता है इस का आशय यह है कि जहां अस्पष्ट ज्ञान होता वहां बुद्धि उत्पत्ति विनाश वाली है ज्ञान कारण के विकल्प से ज्ञान का विकल्प है न कि बुद्धि के बिकल्प से जहां ज्ञान का हेतु अस्थिर है वहां अस्पष्ट ज्ञान होता और जहां स्थिर रहता वहां स्पष्ट ज्ञान होता है क्योंकि अर्थ का ज्ञान बुद्धि है चाहे व्यक्त हो वा अव्यक्त वह बुद्धि है विशेषके ज्ञान न रहते जो सामान्य मात्र का ज्ञान है उसे अव्यक्त ज्ञान कहते और जहां साधारण धर्म युक्त धर्मी का विशेष धर्म से भी ज्ञान होता वह स्पष्ट ज्ञान है।

प्रदीपार्चिः संतत्यभिव्यक्तगृहणवत्तद्गृ-हणम् ॥ १२४ ॥

बुद्धि की अस्थिरता होने पर भी पदार्थों के ज्ञान का स्वीकार करना उचित है जैसे दीप की जोत लगातार नई नई उत्पन्न होतीं और नष्ट हो जाती हैं उनका ज्ञान भी उत्पन्न हो विनाश को प्राप्त होता है क्योंकि ज्ञान का होना वस्तु के आधीन है जब पदार्थ ही न रहा तब उस का ज्ञान क्योंकर रह सक्ता है इसलिये जितनी जोति उतने ज्ञान मानने पड़ेंगे पर तो भी दीपक की जोतियों का स्पष्ट ज्ञान होता है वैसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये।

अब इस बात का विचार किया जाता है कि शरीर में जो चेतनता देखपड़ती है वह किस का गुण है।

द्रव्ये स्वगुणपरगुणोपलब्धेः संशयः ॥ १२५ ॥

पदार्थों में स्वगुण और परगुण की उपलब्धि से संदेह होता है जैसे पानी में अपना गुण द्रवता और दूसरे की उष्णता इस से संदेह होता है कि शरीर में जो चेतनता देखने में आती वह क्या शरीर का गुण है वा दूसरे पदार्थ का।

चेतनता देह का गुण नहीं है यह सिद्ध करते हैं।

यावच्छरीरभावित्वाद्रूपादीनाम् ॥ १२६ ॥

जो रूपादि गुण शरीर के हैं वह जबतक शरीर है तबतक विद्यमान रहते रूपादि गुण रहित शरीर देखने में नहीं आता और चेतनाशून्य शरीर देखा जाता है इसलिये चेतनता शरीर का गुण नहीं है जो कहो कि कालापन आदिगुण द्रव्य में रहते और फिर उसीद्रव्य में उनका अभाव भी देखने में आता इसीप्रकार देह में चेतनताका अभाव भी होसकेगा।

न पाकजगुणांतरोत्पत्तेः ॥१२७॥

रूप का अत्यन्त अभाव पदार्थ में नहीं होता श्याम रूप के अभाव होने पर पाक से दूसरा लालगुण उत्पन्न होजाता है पर शरीर में चेतनता सर्वथा नष्ट होजाती है।

प्रतिद्वन्द्विसिद्धेः पाकजानामप्रतिषेधः ॥१२८॥

जितने पदार्थों में पूर्वगुणके विरोधी दूसरेगुणकी सिद्धि रहती उतनों

में पाकसे उत्पन्न गुण देखने में आते हैं क्योंकि पूर्व गुणों के साथ पाक जन्य गुणों की स्थिति नहीं होती शरीर में चेतना विरोधीकी सिद्धि में साथ न रहने वाला दूसरा ज्ञात नहीं होता कि जिससे चेतना के विरोध का अनुमान किया जाय इसलिये अप्रतिषिद्ध चेतना को जबतक शरीर रहता है तब तक रहना चाहिये पर रहती तो नहीं इसलिये चेतनता शरीर का गुण नहीं है।

शरीरव्यापित्वात्॥१२९॥

शरीरव्यपित्व से चेतनता शरीर का गुण नहीं होसक्ती अर्थात् शरीर और उसके अंग हाथ पैर आदि सब चेतनताकी उत्पत्ति से युक्त हैं इसलिये चेतनता की अनुत्पत्ति नहीं तो शरीर की नाईं उसके अवयव भी चेतन हुये तो इस प्रकार अनेक चेतन होजायंगे जैसे प्रति शरीर चेतन भिन्न हैं इसमें सुखदुःख ज्ञानों की व्यवस्था प्रमाण है वैसे ही एक शरीर में भी होनी चाहिये पर ऐसा होता नहीं अर्थात एक काल में अनेक ज्ञान नहीं होते इसलिये चेतनता शरीर का गुण नहीं है।

केशनखादिष्वनुपलब्धेः ॥१३०॥

जो पहिले कहा था कि शरीर के सब अवयव चेतनता की उत्पत्ति से व्याप्त हैं उसका इस सूत्र से खंडन करते हैं केश नख आदि शरीर के अवयवों में चेतनता नहीं देख पड़ती इसलिये उक्त कथन युक्त नहीं है।

त्वक्पर्य्यन्तत्वाच्छरीरस्य केशनखादिष्वप्रसंगः ॥१३१॥

इंद्रियों का आधार त्वचापर्यन्त शरीर कहाता और वही जीव मन सुख दुःख ज्ञान का स्थान है इसलिये केशादि में चेतनता का प्रसंग नहीं होता।

शरीरगुणवैधर्म्यात् ॥१३२॥

शरीर गुणों के साथ वैधर्म्य होने से चेतनता शरीर का गुण नहीं इसका आशय यह है कि शरीर के गुण दो प्रकार के देखने में आते एक अप्रत्यक्ष जैसे गुरुता आदि दूसरे प्रत्यक्ष जैसे रूप आदि चेतनता इनसे विलक्षण है क्योंकि ज्ञान के विषय होनेसे प्रत्यक्ष है और मनका विषय होने से इंद्रियों का विषय नहीं इसलिये चेतनता शरीर का गुण नहीं होसक्ती।

न रूपादीनामितरेतरवैधर्म्यात् ॥१३३॥

अब फिर उक्त शंका को दृढ करतेहैं कि जैसे रूपादिसे परस्पर विधर्म होकर भी शरीर के गुण होते वैसेही रूपादि से विरुद्धधर्मवाली चेतना भी शरीरही का गुण क्यों नहीं।

ऐन्द्रियकत्वाद्रूपादीनामप्रतिषेधः ॥१३४॥

उक्त शंका का समाधान यह है रूपादिकों को इंद्रिय विषय होने से प्रतिषेधनहीं अर्थात जैसे आपस में विधर्म रूपआदि द्वैविध्य को नहीं छोड़ते वैसेही चेतनता भी द्वैविध्य को न छोड़ती जो शरीर का गुणहोती पर छोड़ती है इसलिये शरीर का गुण नहीं है अब यहां यह एक शंका होती है कि जब भूत इंद्रिय और मनको ज्ञानका निषेध करदिया तब चेतनता शरीरका गुणनहीं इसके विचारकी क्या आवश्यकता थी इसका उत्तर यह है कि जो तत्व कई प्रकार से परीक्षा किया गया वह अति निश्चित होता पुनः उसमें कुछ संदेह नहीं रहता।

बुद्धि की परीक्षा होचुकी अब मन की परीक्षा की जाती है वहां पहिले इस बात का विचार करते हैं कि मन प्रत्येक शरीर में एक है वा अनेक

ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ॥१३५॥

एक काल में अनेकज्ञान नहीं होते इसलिये प्रति शरीर में मन एकही है इंद्रिय को एक समय में एक ज्ञान उत्पन्न कराने की शक्ति है इसलिये एक इंद्रिय से अनेक ज्ञान नहीं होते जैसे आंख से रूप का ज्ञान होता और शब्द का नहीं ऐसेही कान से शब्द का ज्ञान होता पर रूप का नहीं यही वृत्तांत अन्य इंद्रियों का है यद्यपि इस कारण

से मन का एक होना सिद्ध नहीं होसक्ता तथापि भिन्न भिन्न इंद्रियों से जो अनेक ज्ञान एक काल में नहीं होते इससे यह सिद्ध होता कि मन एक है जो मन अनेक होते तो सब इंद्रियों के साथ मन का संयोग होने से एक काल में अनेक ज्ञान होजाते पर ऐसा होता नहीं इसलिये मन एक है ।

न युगपदनेकक्रियोपलब्धेः ॥१३६॥

एक समय में अनेक क्रियाओं के ज्ञान होने से उक्त कथन ठीक नहीं एक पढ़नेवाला पढ़ता चलता कमण्डल धारण किये मार्ग को देखता वन के शब्दों को सुनता डरता हुआ सांप के चिन्हों को जानने की इच्छा किये जिस स्थान को जाना है उसका स्मरण भी करता है यहां क्रम का ज्ञान न होने से एक साथ अनेक क्रियाओं के ज्ञान से मन अनेक हैं यह सिद्ध होता है इस का समाधान अगले सूत्र से होगा ।

अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चारात् ॥१३७॥

अति शीघ्र चलने से घूमते हुए अध जले काठ का विद्यमान भी क्रम ज्ञात नहीं होता इसलिये चक्रसा भान पड़ता है इसी प्रकार ज्ञान और क्रियाओं के अति शीघ्र होने से विद्यमान क्रम का बोध नहीं होता और क्रम का ज्ञान न होने से एक संग क्रिया होतीं यह अभिमान होता है अब यहां यह पूर्व पक्ष होता है कि क्रम का ज्ञान न होने से एक समय अनेक क्रियाओं का ज्ञान होता अथवा एक काल में अनेक क्रियाओं के होने से ही एक समय में अनेक क्रियाओं का बोध होता है इस का उत्तर पहिले हो चुका है कि भिन्न भिन्न इंद्रियों से अन्य २ विषयों में क्रम से ज्ञान होते हैं और यह अनुभव सिद्ध है इसलिये इस का खंडन नहीं हो सकता है ।

यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु ॥ १३८ ॥

उक्त कारण से मन सूक्ष्म है यह भी सिद्ध होता है यदि मन व्यापक होता तो सब इंद्रियों के साथ एक संग संयोग होने से अनेक ज्ञा-

न एक काल में हो जाते पर ऐसा होता नहीं इस से मन सूक्ष्म है यह सिद्ध होगया मन की परीक्षा हो चुकी ।

अब आगे इस बात का विचार किया जाता है कि शरीर की उत्पत्ति जीवों के कर्म के आधीन है वा स्वतंत्र पंचभूतों से होती है ।

पूर्वकृतफलानुबंधात्तदुत्पत्तिः ॥ १३९ ॥

पूर्व शरीर में किये कर्मों के फलानुबन्ध से देह की उत्पत्ति होती है अर्थात् धर्म और अधर्म रूप अदृष्ट से प्रेरित पंचभूतों से शरीर की उत्पत्ति होती स्वतंत्र भूतों से नहीं जिस में स्थित होकर यह आत्मा अहं बुद्धि कर के भोगों की तृष्णा से विषयों को भोगता हुआ धर्म और अधर्म का संपादन करता है वह इस का शरीर है धर्म और अधर्म रूप संस्कार युक्त भूतों से इस शरीर के नष्ट होने पर दूसरा देह बनाया जाता है और उत्पन्न हुए इस शरीरकी पहिले शरीर की नांई पुरुषार्थ क्रिया और पुरुष की पूर्व शरीर की भांति प्रवृत्ति होती है यह बात कर्म सापेक्ष भूतों से शरीर की उत्पत्ति मान ने से सिद्ध होती अन्यथा नहीं लोक में यह देखने में आता है कि पुरुष के प्रयत्न से प्रेरणा किये भूतों से पुरुषार्थ क्रिया में समर्थ रथ आदि पदार्थों की उत्पत्ति होती इस से अनुमान होता है कि पुरुषार्थ क्रिया समर्थ उत्पन्न हुआ शरीर पुरुष गुण धर्माधर्म सापेक्ष भूतों से उत्पन्न होता है ।

इस पर नास्तिक शंका करता है ।

भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत् तदुपादानम् ॥१४०॥

जैसे कर्मनिरपेक्ष भूतों से उत्पन्न हुए रेत कंकड़ पत्थर और गेरू आदि पदार्थ पुरुषार्थ साधक होने से ग्रहण किये जाते वैसे ही कर्म निरपेक्ष भूतों से उत्पन्न शरीर पुरुषार्थ साधक होने से लिया जाता है ।

न साध्यसमत्वात् ॥ १४१ ॥

साध्य के समान होने से नास्तिक का कहना ठीक नहीं है अर्थात् जैसे शरीर की उत्पत्ति कर्म निमित्त नहीं यह साध्य है वैसे ही रेत कंकड़ आदि पदार्थों की उत्पत्ति में कर्मों की अपेक्षा नहीं यह भी तो साध्य ही है फिर दृष्टान्त क्योंकर हो सक्ती है ।

नोत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ॥ १४२ ॥

रेत कंकड़ आदि का दृष्टान्त भी प्रकृत में नहीं लग सक्ता क्योंकि यह वस्तु बिना बीज उत्पन्न होतीं पर देह की उत्पत्ति बीज से है सूत्र में माता पिता से रक्त और बीज का ग्रहण किया है गर्भवास भोगने का प्राणी का कर्म और पुत्र रूप फल भोगने को पिता और माता के कर्म पंच भूतों से माता के गर्भ में शरीर की उत्पत्ति कराते हैं ।

तथाहारस्य ॥ १४३ ॥

खाया पिया आहार भी शरीर की उत्पत्ति में कारण है आहार पचने से माता के शरीर में रस रूप पदार्थ बढ़ता है उसी के अनुसार गर्भ में का बीज बढ़ के रचनाके योग्य एकट्ठा हो बीज और लोहू का मिलना फिर मास की गांठ इत्यादि अनेक रूप ग्रहण करता फिर गर्भ की नाड़ी से उतर रस द्रव्य बढ़ कर उत्पत्ति के योग्य होता है यह बात वर्त्तन में रखे हुए खाने पीने के पदार्थों में देख नहीं पड़ती इससे जान पड़ता है कि शरीर की उत्पत्ति में कर्म कारण हैं ।

प्राप्तौ चानियमात् ॥ १४४ ॥

स्त्री और पुरुष के सब संयोग गर्भ रहने के कारण नहीं होते इससे सिद्ध होता है कि वैसे प्रारब्ध कर्म के रहने से होता और उसके न रहने से गर्भ नहीं होता है कर्म की अपेक्षा न कर भूतों से शरीर की उत्पत्ति मानोंगे तो नियम न रहेगा ।

शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ॥१४५॥

कर्म की अपेक्षा न रख के पंच भूतों से शरीर की बनावट जैसी चाहिये वैसी होनी कठिन है इसलिये शरीर की उत्पत्ति में कर्म को निमित्त मानना पड़ता है पर ऐसा मानने पर भी प्रत्येक आत्मा का सब शरीरों के साथ संबंध होने से सभी शरीर इसके होजायंगे तब यही इसका शरीर है और नहीं यह नियम न रहेगा इसलिये जैसे शरीरकी उत्पत्ति में कर्मको कारण माना है वैसेही किसी एक शरीरके साथ आत्मा के विशेष संयोग होने में भी कर्मही कारण है और जिस शरीर के साथ

आत्मा का विशेष संयोग होता वही शरीर उसका कहा जाता है ।

एतेनानियमः प्रत्युक्तः ॥१४६॥

शरीर की रचना को कर्म निमित्त न मानने से जो अनियम पाया था उसका पहिले सूत्र से खण्डन होगया कोई उत्तम कुलमें जन्म लेता दूसरा नीचकुल में किसी का देह उत्तम किसी का बुरा कोई रोगी किसीके रोगका नाम भी नहीं किसीका पूरा शरीर दूसरे का हीन किसी का दुखी और किसी का सुखी किसीके इंद्रिय तेज दूसरेके इंद्रिय निर्बल इत्यादि और भी बहुत सूक्ष्म भेद हैं जो ज्ञान में नहीं आते यह सब भेद प्रत्येक आत्मा के नियत कर्मों के भेद से सिद्ध होता है कर्म के भेद न मानने से सब आत्माओं के तुल्य होने से और पंचभूतों के नियामक किसी के न रहने से सब आत्माओं के एक से शरीर होजाते पर ऐसा होता नहीं इसलिये शरीर की उत्पत्ति में कर्म निमित्त है ।

उपपन्नश्च तद्वियोगः कर्मक्षयोपपत्तेः ॥१४७॥

शरीर की उत्पत्ति को कर्म निमित्तक मानने से शरीर के साथ आत्मा का वियोग कर्मका नाश होने से सिद्ध होता है सम्यक् ज्ञान होने से मोहका नाश होता फिर विषयों में वैराग होने से विरक्त पुरुष पुनर्जन्म होने के कारण कर्मों को शरीर वाणी और मन से नहीं करता इसलिये आगे कर्म संचित नहीं होते पहिले कर्मों के फल भोगलेने से वह नष्ट होजाते इस प्रकार जन्म के कारण कर्म के अभाव से फिर दूसरा देह नहीं मिलता जो शरीर की उत्पत्ति में कर्म को निमित्त न मानोगे तो पंच भूतों के नाश न होने से शरीर का वियोग कभी न होगा ।

तददृष्टकारितमितिचेत् पुनस्तत्प्रसंगोऽपवर्गे ॥१४८॥

इस सूत्र में अदृष्ट इस पद से अदर्शन इष्ट है भूतों से शरीरकी उत्पत्ति अदृष्टकारित है क्योंकि शरीर की उत्पत्ति के बिना द्रव्य विन

आश्रय के देखने योग्य वस्तु को देख नहीं सक्ता वह दृश्य दो प्रकारका है विषय और प्रकृति पुरुष की अनेकता इसके लिये शरीर की सृष्टि है उसके पूरे होजाने से कृतकार्य भूत फिर शरीर को उत्पन्न नहीं करते इस रीति शरीर का वियोग भी सिद्ध होगया जो ऐसा मानोगे तो फिर मुक्तिमें शरीरकी उत्पत्ति होजायगी इसका आशय यहहै कि जो अदर्शन को शरीर की उत्पत्ति में कारण मानोगे तो मुक्ति में भी अदर्शन विद्यमान ही है फिर शरीर की उत्पत्ति क्यों न होगी क्योंकि अदर्शनों में कुछ भेद तो है ही नहीं।

न करणाकरणयोरारंभदर्शनात् ॥१४६॥

चरितार्थ भूत दर्शन के पूरे होजाने से दूसरे शरीर का आरंभ नहीं करते यही विशेष यदि कहोतो विषय के ज्ञान कराने से चरितार्थ भूतों से वार वार शरीर की उत्पत्ति होती प्रकृति पुरुष के अनेकत्व के दर्शन के बिनाही फिर फिर वे अर्थ शरीर की उत्पत्ति देखने में आती है इसलिये शरीर की उत्पत्ति को कर्म निमित्तक न मानकर अदर्शन को शरीर की उत्पत्ति में कारण मानना ठीक नहीं जो कहो अदृष्ट परमाणुओं का विशेष गुण है जिससे प्रेरित परमाणु शरीर को उत्पन्न करते उसमें मन का प्रवेश होता स्वगुण अदृष्ट से प्रेरित मन युक्त शरीर में आत्माको ज्ञान होता है इस पक्ष में परमाणुओं के गुण अदृष्ट का नाश न होने से मोक्ष में भी फिर शरीर की उत्पत्ति होजायगी।

मनः कर्मनिमित्तत्वाच्च संयोगानुच्छेदः ॥१५०॥

जो अपने गुण अदृष्ट से शरीर में मनका प्रवेश कहोगे तो संयोगका नाश न होगा और तब शरीर से मनका निकल जाना किस कारणसे कहोगे एक कर्माशय के नाश से और दूसरे कर्माशयके विपाकसे उक्त विषय की उपपत्ति हो सक्ती है यदि कहो कि अदृष्ट ही से मन का शरीर से निकलना होता है तो जो अदृष्ट शरीर संयोग में हेतु है वही वियोग का कारण होगा तब तो एक ही अदृष्ट को जीवन मरण दोनों का कारण कहना पड़ेगा और यह बात सर्वथा अनुचित है।

नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायणानुपपत्तेः ॥१५१॥

विपाक संवेदनसे कर्माशय का नाश होनेसे शरीरका जो पात है उसे मरण कहते दूसरे कर्माशय से फिर जन्म होता कर्म निरपेक्ष भूतोंसे शरीर की उत्पत्ति मानोगे तो किसके नाश से शरीर का पात कहोगे और उसके न होने से नित्यत्व होजायगा जो कहो अकस्मात मरण होजाता तो फिर उसमें भेद न होना चाहिये और मुक्ति दशा में फिर जन्म का प्रसंग होजायगा।

इस के समाधान का इच्छुक कहताहै

अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत् स्यात् ॥१५२॥

जैसे परमाणुओं का कालापन अग्नि से रुका हुआ फिर उत्पन्न नहीं होता ऐसे ही अदृष्ट कारित शरीर मोक्ष कालमें फिर उत्पन्न नहीं होगा।

नाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥१५३॥

परमाणुओं के कालापन के दृष्टांत से अकर्म निमित्त शरीरकी उत्पत्तिके समाधान करने वाले को अकृत के अभ्यागम का प्रसंग आता है अर्थात् सुख दुख के कारण कर्मोंके किये बिना ही पुरुषको सुख और दुख भोगने पड़तेहैं यह दोष आवेगा जो अंगीकार करो तो प्रत्यक्ष अनुमान और शास्त्र प्रमाण का विरोध आवेगा पहिले प्रत्यक्ष प्रमाणका विरोध प्रत्येक आत्मा को भिन्न भिन्न सुख दुख का अनुभव होता किसी को विशेष सुख किसी को साधारण किसीका सुख अधिक किसी का न्यून कोई चिरकाल सुख भोगता किसीका सुख थोड़े समय रहता इत्यादि विशेष देखपड़ते और प्रत्येक आत्माके लिये नियत सुख और दुखका विशेष कारण है नहीं और बिना विशेष कारण के फल में विशेषता कहीं देखने में नहीं आती तब कारण का भेद न रहने परभी सुख दुख में भेद मानना पड़ेगा यही प्रत्यक्ष विरोध है पुरुष गुण की व्यवस्था से सुख और दुःख की व्यवस्था लोक में देख पड़ती है जैसे जो बुद्धिमान सुख को साधन से साध्य जान कर जो सुख जिस साधन से सिद्ध होसक्ता उस सुख के सिद्ध करने की इच्छा करता हुआ उसी साधन की प्राप्ति के लिये यत्न करता है वह सुख पाता है अन्य नहीं ऐसे ही जो दुख को

साधन से साध्य जान जिस साधन से जो दुःख होता उस दुःखसे बचने के लिये उसके साधन को त्यागने के लिये यत्न करता है वह दुःखसे बचता है इससे उलटा करने वाला दुख पाता है इस दृष्टांत से अनुमान होता है कि जीवों को यहां विन यत्न जो सुख दुख होते हैं उनका कोई कारण अवश्य होगा और दृष्ट कारण कोई देखने में नहीं आता इससे सिवाय पूर्व जन्म के कर्मों के और कारण कौन होसक्ता है यह बात शरीर प्राप्ति को कर्म निमित्तक न मानने से बिरुद्ध होती यही अनुमान का बिरोध है प्रामाणिक महात्मा ऋषियों ने कितने कर्मों के करने का और बहुतेरे कर्मोंके छोड़ने का उपदेश किया है और उस उपदेश का फल विद्यमान है क्योंकि देहधारी वर्ण और आश्रम के विभाग से अपने कर्त्तव्यों में प्रवृत्त और अनुचित कर्मों से निवृत्त होतेहैं यह बात देह सृष्टिको कर्मनिमित्तक नमाननेसे सिद्ध नहीं होती यह आगम विरोध हुआ इसलिये शरीर की उत्पत्ति और जीव को सुख दुखका संयोग कर्म निमित्तक नहीं यह नास्तिकों की कल्पना मिथ्या है यह सिद्ध हो गया।

इति मिश्र शालग्राम शास्त्रि विरचितायां
न्यायतत्वबोधिन्यां तृतीयोध्यायः।

न्यायदर्शन ४ अध्याय।

मन के अनंतर प्रवृत्ति की परीक्षा करनी चाहिये पर धर्माधर्माश्रय शरीर आदि की परीक्षाकी गई यह प्रवृत्ति की पहिली परीक्षा है।

प्रवृत्तिर्यथोक्ता ॥ १ ॥

अर्थात् प्रवृत्तिकी परीक्षा की गई।

तथा दोषाः ॥ २ ॥

अर्थात् इन की भी परीक्षा हुई बुद्धि के समान आश्रय होने से आत्मा के गुण हैं और प्रवृत्ति के कारण हैं पुनर्जन्म के कारण होने से संसार के हेतु संसार के अनादित्व से अनादि प्रबन्ध से वर्त्ततेहैं तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति फिर उस से राग द्वेष के प्रबंधका उच्छेद तदनंतर मुक्ति होती है प्रादुर्भावनिरोध धर्मक दोष प्रवर्त्तना लक्षण दोष यह प्रथम कह चुके हैं मान ईर्ष्या असूया संदेह मत्सर आदि भी दोष हैं इन की क्यों नहीं गणना की इसलिये कहते हैं।

तत् त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात् ॥ ३ ॥

उन दोषों की तीन राशि अर्थात् पक्ष हैं काम मत्सर स्पृहा तृष्णा और लोभ यह राग पक्ष क्रोध ईर्ष्या असूया द्रोह और अमर्ष यह द्वेष पक्ष मिथ्याज्ञान संशय मान और प्रमाद यह मोह पक्ष हैं मान ईर्ष्यादि इन्ही तीन पक्ष में आगये इसलिये पृथक गणना नहीं की।

शंका करते हैं।

नैकप्रत्यनीकभावात् ॥ ४ ॥

एक विरोधी होने से राग आदि भिन्न नहीं तत्व ज्ञान सम्यङ् मति आर्यप्रज्ञा संबोध जिसे कहते वह एक ही तीनों का विरोधी है अर्थात तत्व ज्ञान होने से रागादि नष्ट होजाते इसलिये तत्व ज्ञान एक ही सब का विरोधी है।

समाधान

व्यभिचारादहेतुः ॥ ५ ॥

व्यभिचार होने से उक्त हेतु ठीक नहीं पृथिवीमें श्याम आदि रूपों का एक अग्नि संयोग विरोधी है पर वह परस्पर भिन्न हैं अर्थात् यह कहना कि एक विरोधी होने से रागादि अभिन्न हैं यह ठीक नहीं क्यों कि जिन का एक विरोधी हो वह परस्पर पृथक् नहीं ऐसा नियम नहीं है ।

तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेः ॥ ६ ॥

रागादिकों में मोह बहुत बुरा है क्योंकि जिस को मोह नहीं उस को राग द्वेष भी नहीं होते विषयों में रंजनीय संकल्प राग के कारण कोपनीय संकल्प द्वेष के हेतु होते हैं दोनों प्रकार के संकल्प मिथ्या प्रतिपत्ति रूप होने से मोह से भिन्न नहीं राग और द्वेष का मोह कारण है तत्व के ज्ञान से मोह की निवृत्ति होने पर राग द्वेष उत्पन्न नहीं होते हैं ।

प्राप्तस्तर्हि निमित्तनैमित्तिकभावादर्था-
न्तरभावो दोषेभ्यः ॥ ७ ॥

तो फिर कार्य कारण भाव होने से दोषों से भिन्नता हो जायगी अर्थात् कारण और कार्य भिन्न होते हैं मोह दोष का कारण होने से दोष नहीं हो सक्ता है ।

न दोषलक्षणावरोधान्मोहस्य ॥ ८ ॥

प्रवर्त्तना लक्षणा दोषा इस लक्षण से मोह की दोषों में गिनती है अर्थात् दोष का लक्षण मोह में भी आता है फिर मोह दोष क्यों नहीं कहा जाय दोषों से भिन्न नहीं होसक्ता ।

निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेश्च तुल्यजाती-
यानामप्रतिषेधः ॥ ९ ॥

तुल्य जातीय द्रव्य और गुणों का अनेक प्रकार का कार्य कारण भाव देखने में आता इसलिये प्रतिषेध नहीं हो सक्ता दोषपरीक्षा पूरी हुई अब प्रेत्यभाव का विचार किया जाता है ।

आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ॥ १० ॥

आत्मा नित्य है इसलिये प्रेत्यभाव सिद्ध होता है नित्य यह आत्मा पूर्व शरीर को छोड़ता और दूसरे शरीर को ग्रहण करता इसी का नाम प्रेत्य भाव है यह आत्मा के नित्यत्व से होसक्ता है जो शरीर की उत्पत्ति और उस के नाश ही को प्रेत्य भाव मानते उन के मत में कृतहान अर्थात् किये हुए कर्मों का नाश और विन किये कर्मों की प्राप्ति यह दोष आता है और ऋषियों के उपदेश भी निरर्थक होते हैं ।

उत्पत्ति कैसे होती इस का उत्तर देते हैं ।

व्यक्ताद्व्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात् ॥ ११ ॥

परमसूक्ष्म नित्य व्यक्त पृथिवी आदि से शरीर इन्द्रिय विषयोप करण का आधार व्यक्त द्रव्य उत्पन्न होता है प्रत्यक्ष प्रमाण से इंद्रिय ग्राह्य व्यक्त है तत्समान जातीय होने से कारण भी व्यक्त होना चाहिये रूप आदि गुणों का योग ही समानता है अर्थात् रूप आदि गुण युक्त नित्य पृथिवी आदि भूतों से रूप आदि गुण युक्त शरीर उत्पन्न होता है क्योंकि रूपादि गुण युक्त मृत्तिकादि से वैसेही रूपादि गुणयुक्त वस्तुओं की उत्पत्ति देखने में आती है इससे अनुमान होता है कि व्यक्त से व्यक्त उत्पन्न होता है ।

न घटाद्घटानिष्पत्तेः ॥१२॥

घट से घट उत्पन्न नहीं होता यह भी प्रत्यक्ष है इसलिये व्यक्त का कारण व्यक्त नहीं होसक्ता है ।

व्यक्ताद् घटनिष्पत्तेरप्रतिषेधः ॥१३॥

हम यह नहीं कहते कि सब सब का कारण है किन्तु जो व्यक्त द्रव्य उत्पन्न होता है वह वैसेही कारण से उत्पन्न होता है मट्टीरूप द्रव्य जिस से घट हुआ वह व्यक्त है इसको कोई छिपा नहीं सक्ता यह तत्व है ।

इसके अनन्तर वादियों के विचार दिखलाये जाते हैं ।

अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ॥१४॥

अभाव से भाव की उत्पत्ति होती क्योंकि बीज के नाश से अंकुर उत्पन्न होता है बीज के उपमर्द बिना अंकुर नहीं निकलता है।

व्याघातादप्रयोगः ॥१५॥

तुम्हारे कहने में व्याघात दोष आता है इससे उक्त प्रयोग ठीक नहीं जो उपमर्दन करता है वह उसका उपमर्दन कर प्रगट होने के योग्य नहीं क्योंकि पहिलेही विद्यमान है और जो प्रगट होता है वह उपमर्दक नहीं होसक्ता क्योंकि प्रगट होने के पूर्व वह विद्यमान ही नहीं फिर उपमर्दक कैसा।

नातीतानागतयोः कारकशब्दप्रयोगात् ॥१६॥

अतीत और अनागतमें कारक शब्दों का प्रयोग होताहै जैसे पुत्र उत्पन्न होगा उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम रखता है घट हुआ फूटे घड़े का शोच करता इत्यादि बहुधा गौण प्रयोग देखने में आते प्रगट होनेवाला अंकुर उपमर्दन करता है इस प्रकार अंकुर को गौण कर्तृत्व है इसलिये उक्त दोष नहीं आसक्ता है।

न विनष्टेभ्योऽनिष्पत्तेः ॥१७॥

नष्ट बीजसे अंकुर नहीं होता इसलिये अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सक्ती।

क्रमनिर्द्देशादप्रतिषेधः ॥१८॥

उपमर्द और प्रादुर्भावका जो पौर्वापर्य्य नियम उसको क्रम कहते वह अभाव से भावकी उत्पत्ति में हेतुहै और उसका निषेध नहींहै अवयवों की पहिली बनावट नष्ट होती और दूसरी बनावटसे वस्तु उत्पन्न होती अर्थात बीजके अवयवों में किसी कारण से क्रिया उत्पन्न होनेसे पूर्व रचनाका त्याग और दूसरी के प्रगट होने से अंकुर प्रगट होता है बीज के अवयव और उनके संयोग अंकुरकी उत्पत्ति में कारण देख पड़ते हैं पहिली रचना के नाश विन बीजके अवयवों में दूसरी रचना हो नहीं सक्ती इससे उपमर्द प्रादुर्भाव के पौर्वापर्य्य नियम को क्रमत्व सिद्ध हुआ इस लिये अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं और बीज

के अवयवोंसे भिन्न अंकुर की उत्पत्तिमें कोई कारण देखनेमें नहीं आता इसलिये बीज ही अंकुरका उपादान कारण है।

दूसरा कहता है

ईश्वरः कारणं पुरुषकर्म्माफल्यदर्शनात् ॥१९॥

यह पुरुष उद्योग करता है पर नियमसे फल नहीं पाता इस से अनुमान होता है कि पुरुषार्थ का फल पराधीन है जिस के अधीन वह ईश्वर है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि शरीर की उत्पत्ति में ईश्वर कारण है।

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः ॥२०॥

जो फलका सिद्ध होना ईश्वरके अधीन होता तो बिना यत्न के भी कार्य सिद्ध होजाता पर विन उद्योग कोई काम सिद्ध नहीं होता इसलिये उक्त पक्ष ठीक नहीं।

तत्कारितत्वादहेतुः ॥२१॥

ईश्वर कारित होनेसे उक्त हेतु यथार्थ नहीं फलके लिये यत्न कर्त्ता पुरुष को ईश्वर फल देता है जब नहीं देता तब पुरुषार्थ का फल सिद्ध नहीं होता है।

तीसरा कहता

अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ॥२२॥

कांटे का तीखापन पहाड़ी धातुओंकी बिचित्रता और पत्थरोंका चिकनापन वे कारणका देख पड़ता इससे पदार्थों की उत्पत्ति बिना कारण सिद्ध होती है।

अनिमित्तनिमित्तत्वान्नानिमित्ततः ॥२३॥

पदार्थों की उत्पत्ति अनिमित्तसे होती है ऐसा कहते हो जिस से उत्पन्न होता वही निमित्तहै तो अनिमित्तको निमित्तता होनेसे भाव की उत्पत्ति अनिमित्तक न हुई।

निमित्तानिमित्तयोरर्थान्तरभावादप्रतिषेधः ॥२४॥

निमित्त और वस्तु है तथा निमित्तका खंडन कुछ और पदार्थ है प्रत्याख्यान और प्रत्याख्येय एकही नहीं होते अनुदक कमंडलु कहने से जलका निषेध समझा जाता न कि कलका निषेध जल होता है पर यह पूर्व पक्ष शरीरादिकों की रचना कर्म निमित्तक नहीं उससे पृथक् सिद्ध नहीं होता इसलिये उसके खंडन से ही इस का खंडन जान लेनाचाहिये ।

कोई ऐसा मानते हैं

सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥२५॥

उत्पत्ति बिनाशवान् होनेसे सब अनित्यहैं जो कभी हो अर्थात् सर्वदा जिस की स्थिति न हो उसे अनित्य कहते हैं ।

नानित्यतानित्यत्वात् ॥२६॥

जो सबकी अनित्यता नित्य है तो उस की नित्यता से सब अनित्य नहीं होसक्ते और जो अनित्य है तो उसके न होने से सब नित्य हैं ।

तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुबिनाशवत् ॥२७॥

उस अनित्यताका भी अनित्यत्व है जैसे अग्नि जलाने योग्य बस्तु का नाश कर आप भी नष्ट होजाता वैसे ही सबकी अनित्यता सब का नाश कर पीछे आप भी नष्ट होजाती है ।

नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धिव्यवस्थानात् ॥२८॥

नित्य पदार्थ का खंडन नहीं होसक्ता जिसके उत्पत्ति विनाश प्रमाण से सिद्ध हैं वह अनित्य और जिस के उत्पत्तिविनाश प्रमाण से सिद्ध न होसकें वह नित्य हैं परम सूक्ष्म भूत आकाश काल दिक् आत्मा मन कुछ उनके गुण और सामान्य विशेष समवाय इनकी उत्पत्ति और बिनाश प्रमाण से सिद्ध नहीं होते इसलिये यह नित्य हैं ।

सर्व्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥२९॥

सब नित्य हैं पंच भूतों के नित्य होने से यह सब भूत मात्र हैं और वह नित्य हैं इसलिये सभी नित्य हैं ।

नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ॥३०॥

उत्पत्ति और बिनाश का कारण देख पड़ता है इसलिये सब पदार्थ नित्य नहीं होसक्ते ।

तल्लक्षणावरोधादप्रतिषेधः ॥३१॥

तल्लक्षणके अवरोध से प्रतिषेध नहीं हो सक्ता अर्थात् जिस के उत्पत्ति और बिनाशका कारण प्राप्त होता मानते हो उस में भी परमाणुओंकी भांति भूतत्व विद्यमान है इसलिये नित्यत्वका निषेध नहीं हो सक्ता ।

नोत्पत्तितत्कारणोपलब्धेः ॥३२॥

कारण के समान गुणवाले की उत्पत्ति और उसके कारण की उपलब्धि होने से तुम्हारा कहना युक्त नहीं क्योंकि उत्पत्ति और उस के कारण की उपलब्धि का खंडन नहीं हो सक्ता बिन विषय का कोई ज्ञान नहीं होता इसलिये कारण के तुल्य गुणवान कार्य उत्पन्न होता है ऐसा अनुमान किया जाता उत्पत्ति विनाश कारण प्रेरित ज्ञाता का प्रयत्न देख पड़ता है उत्पत्ति विनाश धर्मवान अवयवी सिद्ध होता है शब्द कर्म बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष और प्रयत्न यह उक्त हेतु से व्याप्त नहीं इसलिये व्यभिचार आता है यदि कहो कि स्वप्न विषय अभिमान वत् उपलब्धि मिथ्या है तो पृथिवी आदि कों भी उपलब्धि भी स्वप्न विषयक अभिमान की नांई मिथ्या हो जायगी जो कहो कि पृथिवी आदि के अभाव होने से सब व्यवहार लुप्त होजायंगे तो उत्पत्ति बिनाश कारण उपलब्धि विषय के अभाव से भी सब व्यवहारों का लोप होजायगा विद्यमान उपादान का केवल धर्म निवृत्त होजाता और धर्म मात्र ही उत्पन्न होता है वही उत्पत्ति और विनाशका विषय है और

जो उत्पन्न होता है वह उत्पत्ति के पूर्व भी विद्यमान है और जो नि-वृत्त होना वह निवृत्त भी वर्त्तमान है इस प्रकार सभी की नित्यता सिद्ध होती है ।

न व्यवस्थानुपपत्तेः ॥ ३३ ॥

उत्पन्न और निवृत्त के विद्यमान होने से यह उत्पत्ति तथा यह निवृत्ति यह व्यवस्था सिद्ध नहीं होती अब उत्पत्ति निवृत्ति हैं और अब नहीं है यह काल की व्यवस्था नहीं बनती क्योंकि सर्वदा वर्त्तमान हैं अनागत अतीत इत्यादि काल व्यवस्था भी सिद्ध न होगी अविद्यमान को स्वरूप की प्राप्ति उत्पत्ति और स्वरूप हानि निवृत्ति ऐसा मानने से उक्त दोष नहीं आते इसलिये उत्पत्ति के पूर्व भी विद्यमान और निवृत्त भी है यह कहना ठीक नहीं है ।

सर्व्वं पृथग्भावलक्षणपृथक्त्वात् ॥ ३४ ॥

सब अनेक हैं कोई एक पदार्थ नहीं क्योंकि जिन से पदार्थ लक्षित होता वह अनेक हैं अर्थात् सब शब्द समुदाय के वाचक हैं जैसे कुंभ यह शब्द गंध रस रूप स्पर्श इन के समुदाय और पार्श्वग्रीवा आदि कों का वाचक है इस का वाच्य कोई एक अवयवी नहीं यह उदाहरण मात्र है ।

नानेकलक्षणैरेकभावनिष्पत्तेः ॥ ३५ ॥

अनेक लक्षणों से एक भाव की सिद्धि होने से उक्त कथन युक्त नहीं अर्थात् गंधादि गुण ग्रीवादि अवयवों से संबद्ध एक भाव उत्पन्न होता है गुणों से भिन्न द्रव्य और अवयवों से पृथक् अवयवी कहाता है ।

लक्षणव्यवस्थानादेवाप्रतिषेधः ॥ ३६ ॥

कोई एक भाव नहीं यह कहना ठीक नहीं क्योंकि संज्ञा भूत जो भाव का लक्षण है वह एक में स्थित है जिस घट को मैंने देखा था उसी को छूता हूं जिसी घट का स्पर्श किया उसी को देखता हूं यह व्यवहार परमाणु समुदाय में नहीं होता जिस का ज्ञान होता वह एक ही वस्तु है एक भाव नहीं यह प्रतिज्ञा करके समूह में भाव शब्द

के प्रयोग होने से यह हेतु दिया इस से जिस बात का निषेध किया वही सिद्ध होती है क्योंकि एक के राशि का नाम ही समूह है तब समूह का आश्रय कर समूही का प्रतिषेध करना सर्वथा असंगत है इस का तात्पर्य यह है कि जब एक न मानोगे तब समुदाय किस का कहोगे ।

सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिध्देः ॥३७॥

भावों में परस्पर अभाव सिध्द होने से सब अभाव रूप हैं अश्व-रूप से गौ नहीं है इसी प्रकार गो रूप से अश्व नहीं एवं असत् प्रत्ययस्थ निषेध का भाव शब्द के साथ अभेद होने से सब अभाव रूप हैं इस प्रतिज्ञा वाक्य में सब और अभाव इन पदों का और प्रतिज्ञा हेतु का परस्पर विरोध होने से उक्त बात ठीक नहीं क्योंकि अशेषपन सब इस शब्द का अर्थ है और भाव का निषेध अभाव शब्द का अर्थ है पहिला सोपाख्य और दूसरा नीरूपाख्य तब जिस वस्तु का सम्यक उपाख्यान कियाजाय वह निरूपाख्य अभाव क्यों कर हो सकता है निरूपाख्य अभाव अनेकता वा अशेषता रूप से कभी भी प्रतिज्ञात नहीं हो सकता यदि कहो कि यह सब अभाव ही है तो तुम जिस को यह सब मानते हो और अभाव कहते हो इस पर व्याघात दोष आता है जैसे कोई कहे कि मेरे मुख में जिव्हा नहीं तो उस से यही कहा जायगा कि यदि तेरे जिव्हा नहीं तो बोलता कैसे है इसी प्रकार सब कहना और अभाव बताना वैसा ही है जब सब ऐसी प्रतीत है तब अभाव कभी नहीं कह सकते हैं ।

न स्वभावसिध्देर्भावानाम् ॥ ३८ ॥

स्वकीय भाव से भावों के सद्भाव से सब अभाव नहीं हो सकते द्रव्य गुण कर्म का सदादि सामान्य द्रव्यों का क्रियावत्व पृथिवी के स्पर्श पर्यंत और सामान्य विशेष समवाय के विशेष धर्म ग्रहण किये जाते सो यह भेद अभाव के निरुपाख्य होने से नहीं होसकता और यह अर्थ भेद है इसलिये सब अभाव नहीं कहे जा सकते अथवा इस सूत्र की व्याख्या यों करनी कि गो इस शब्द के प्रयोग से जाति विशिष्ट

पदार्थ का ज्ञान होता है न कि केवल अभाव का यदि सब अभाव रूप ही होता तो गो शब्द के उच्चारण से अभाव का भी बोध होता अथवा अश्वरूप से गौ नहीं ऐसा कहते हो पर गो रूप से गौ नहीं ऐसा क्यों नहीं कहते इसलिये गोरूप से गौ है यह सिद्ध हुआ यही भावों की स्वभाव से सिद्धि है ।

न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ॥३९॥

आपेक्षिक होने से स्वभाव सिद्धि नहीं होसकती जैसे ह्रस्व की अपेक्षा दीर्घ और ऐसेही दीर्घ की अपेक्षा ह्रस्व कहाता स्वस्वरूप से स्थित कुछ भी नहीं है अपेक्षा सामर्थ्य से भावों की स्वभाव सिद्धि नहीं है ।

व्याहतत्वादयुक्तम् ॥४०॥

व्याहत होने से उक्त कथन युक्त नहीं क्योंकि जो ह्रस्वापेक्षा कृत दीर्घ है तो किसकी अपेक्षा ह्रस्व का ग्रहण होता यदि कहोकि दीर्घ की अपेक्षा ह्रस्व का ग्रहण होता तो अन्योन्याश्रय होने से एक की भी सिद्धि न होगी इसलिये अपेक्षा व्यवस्था उत्पन्न नहीं होसकती ।

अब यह संख्या के एकान्त हैं सब एकही है सत् रूप से विशेषता न होने से सब दो प्रकार का है नित्य और अनित्य के भेद से सब तीन प्रकार का ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय भेद से सब चार प्रकार का प्रमाता प्रमाण प्रमेय और प्रमिति रूप से ऐसेही और भी यथा संभव जानलेना चाहिये अब इनकी परीक्षा कीजाती है ।

संख्यैकान्तासिद्धिः कारणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ॥४१॥

यदि साध्य और साधन का अनेकत्व है तो एकांत सिद्ध नहीं होता भेद होने से और जो साध्य साधन का अभेद है तो भी साधन के न होने से एकांत सिद्ध नहीं होसकता क्योंकि साधन के विना किसी वस्तु की सिद्धि नहीं होती है ।

न कारणावयवभावात् ॥४२॥

संख्यैकांत की असिद्धि नहीं कारण के अवयवत्व से कोई अवयव साधन रूप होजायगा इस रीति व्यतिरेक नहीं आता ऐसेही द्वैतादिके विषय समझलेना चाहिये ।

निरवयवत्वादहेतुः ॥४३॥

कारणावयवभावात् यह हेतु ठीक नहीं क्योंकि निरवयवत्व होने से सब एक हैं यह समुदित रूपसे प्रतिज्ञा करके किसी का एकत्व कहते हो वहां पृथक् भूत अवयव साधन नहीं होसकता इसीप्रकार द्वैतादिकों में समझलेना यह संख्यैकांत विशेष रूप से किये हुये अर्थ विस्तार का प्रत्याख्यान कर नहीं सक्ते प्रत्यक्ष अनुमान और आगमके विरोध से मिथ्यावाद हैं यह तत्व ज्ञान के विवेचनार्थ एकांतों की परीक्षा की गई ।

सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः ॥४४॥

पकाताहै दुहता है इन क्रियाओंका फल भात और दूध तत्काल देख पड़ता है खेत जोतना और बोना इन क्रियाओं का फल कुछ समय के बाद होता है स्वर्ग की इच्छा जिसे हो वह अग्नि होत्र करे तो होम करना यह भी एक प्रकार की क्रियाही है इसके फल में संदेह है ।

न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् ॥४५॥

इसका शीघ्र फल नहीं होता किन्तु समयांतर में होता है ।

कालान्तरेणानिष्पत्तिर्हेतुविनाशात् ॥४६॥

कारण के विनाश से कालांतर में सिद्धि नहीं होसकती क्रिया जब नष्ट होगई तब कारण के विना फल उत्पन्न नहीं होसकता क्योंकि नष्ट कारण से कुछ उत्पन्न नहीं होता है ।

प्राङ्निष्पत्तेर्वृक्षफलवत्तत्स्यात् ॥४७॥

वृक्ष फल की भांति उत्पत्तिके पूर्व वह होगा जैसे फलार्थी वृक्ष की जड़ में सींचना आदि क्रिया करता है उस क्रिया के नष्ट होने पर

मट्टी जल से मिल कर भीतर की आग से पकायी गयी रस को उत्पन्न करती है वह रस वृक्ष में प्रविष्ट होकर पाक सहित रूपांतर को प्राप्त हुआ पत्ता आदि फल उत्पन्न करता है इस प्रकार सीचनादि क्रिया सफल होती न कि विनष्ट से फल की सिद्धि होती है वैसे ही प्रवृत्ति से धर्माधर्म लक्षण संस्कार उत्पन्न होता और फिर अन्य निमित्त से अनुगृहीत हुआ कालांतर में फल उत्पन्न करता है।

नासन्न सन्न सदसदसत्सतोर्वैधर्म्यात् ॥ ४८ ॥

उत्पन्न होने के पहिले उत्पत्ति धर्म वाला असत् नहीं उपादान कारण के नियम होने से किसी की उत्पत्ति के लिये कोई लिया जाता है न कि सब की उत्पत्ति के लिये सब लिये जाते यदि उत्पत्ति के पूर्व कार्य का अभाव होता तो नियम न होसक्ता सत् भी नहीं कह सक्ते क्योंकि उत्पन्न होने के पहिले जो विद्यमान है उस की उत्पत्ति युक्त नहीं सदसत् रूप नहीं हो सकता क्योंकि सत् और असत् का विरोध है जो भाव रूप है वह अभाव क्योंकर होसकता।

इस का समाधान अगले सूत्र से किया जाता है।

प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मकमसदित्यद्धोत्पादव्य
यदर्शनात्॥४६॥

उत्पत्ति के पहिले उत्पत्ति धर्मवाला असत् है यह सिद्धान्त है क्यों कि उत्पत्ति और विनाश देखने में आते हैं अच्छा तो फिर यह जो कहा था कि उत्पन्न होने के पूर्व कार्य सत् है उपादान कारण के नियम होने से इसका उत्तर क्या है सुनो।

बुद्धिसिद्धं तु तदसत्॥५०॥

यह कार्य असत् है पर बुद्धि से सिद्ध है यह कारण इस वस्तु के उत्पन्न करने में समर्थ है सब नहीं यह उत्पत्ति के पूर्व नियत कारण कार्य की बुद्धि से सिद्ध जान लेता है इसलिये उपादान का नियम सिद्ध होता यदि उत्पन्न होने के प्रथम कार्य होता तो उसकी उत्पत्ति ही न बन सक्ती।

आश्रयव्यतिरेकाद्वृक्षफलोत्पत्तिवदित्य-
हेतुः ॥५१॥

आश्रय के भेद होने से वृक्ष फलोत्पत्ति का दृष्टांत ठीक नहीं इसलिये उक्त हेतु समीचीन नहीं जड को सींचना आदि काम और फल इन दोनों का आधार वृक्ष है पर यज्ञादि कर्म तो इस शरीर से किये और फल उनका परलोक में हुआ इस रीति आश्रय के भेद होने से उक्त हेतु ठीक नहीं है।

प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः॥५२॥

प्रीति का प्रत्यक्ष आत्मा को होता है इसलिये प्रीति का आश्रय आत्मा है और कर्म जिसे धर्म कहते वह भी आत्मा ही का गुण है इसलिये प्रतिषेध नहीं हो सकता अर्थात् कर्म और उसका फल दोनों आत्मा ही में विद्यमान हैं।

न पुत्रपशुस्त्रीपरिच्छदहिरण्यान्नादिफल-
निर्देशात् ॥५३॥

पुत्रादि प्राप्ति फल कहते हैं न कि प्रीति ग्राम की कामनावाला यज्ञ करे पुत्र की इच्छा जिसे हो यज्ञ करे ऐसे ही स्त्री की इच्छा जिसे हो वह अमुक यज्ञ करे इत्यादि इसलिये प्रीति को फल कहना उचित नहीं है।

तत्सम्बन्धात्फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः॥५४॥

पुत्रादिकों के सम्बन्ध से प्रीति रूप फल उत्पन्न होता है इसलिये उनमें फल का आरोप किया गया है जैसे अन्नमें अन्नं वै प्राणाः यह प्राणत्व का आरोप किया गया क्योंकि अन्नसे प्राणों की पुष्टी होती है।

फल के अनन्तर दुःख की परीक्षा करते हैं।

विविधबाधनायोगाद्दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः॥५५॥

अनेकविध दुःख सम्बन्ध से शरीरादिकों की उत्पत्ति दुःख रूप ही है नारकी जीवों को उत्कृष्ट दुःख पशु पक्षियों को मध्यम मनुष्यों को हीन देव और वीतरागों को हीन तर इस प्रकार सब उत्पत्ति का स्थान अनेक प्रकार के दुःख से युक्त है ऐसे विचार कर्ता

को सुख और उस के साधन तथा शरीर इन्द्रिय बुद्धि में दुःख संज्ञा स्थित होने से सब लोकों में अरुचि उससे सब लोकों की तृष्णा दूर होती फिर तृष्णा के नाश होने से सब दुःखों से छूटता है जैसे विष के योग से दूध को विष जाननेवाला उसका ग्रहण न करने से मरण के दुःख को नहीं पाता है।

न सुखस्यान्तरालनिष्पत्तेः ॥५६॥

दुःखों के मध्य में सुख की प्राप्ति होने से यद्यपि उसका निषेध करना अशक्य है तोभी।

वाधनाऽनिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः॥५७॥

सुखसाधन के जानने वाले की सुख साधन में प्रवृत्ति के दोष से दुःख निवृत्ति न होने से दुःख भावना का प्रतिषेध नहीं होसक्ता अर्थात् सुखसाधन जानने वाला याचना करता उस की प्रार्थना सिद्धि न हुई या सिद्धि होकर बिगड़गई वा न्यून सिद्ध हुई अथवा बहुत विरुद्ध प्राप्त हुई इस पर्येषण दोष से अनेक प्रकार का मन को संताप होता है इस कारण से शरीरादि दुःख रूप हैं न कि सुखके अभावसे अथवा किसी पदार्थ के इच्छुक की जब कामना पूरी होजाती तब झट दूसरी कामना इसे दुख देने लगती है यदि समुद्र पर्यंत यह पृथिवी इसे मिलजाय तो भी इस की तृप्ति न होगी किंतु दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जायगी।

दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च ॥५८॥

दुःखविकल्प में सुखाभिमान से भी दुःख संज्ञा भावना का उपदेश किया जाता है निश्चय यह जीव सुखके अनुभव में प्रवृत्त सुखको परम पुरुषार्थ मानता है उसके विना दूसरा कल्याण नहीं जानता सुख की प्राप्ति होने पर अपने को कृतार्थ समझता है मिथ्या संकल्प से सुख और उसके साधन विषयों में अनुराग करता है फिर सुखके लिये उद्योग करता उससे जन्म मरण जरा व्याधि अनिष्ट संयोग इष्ट वियोग और प्रार्थित की अनुपपत्ति निमित्तक अनेक प्रकारका दुःख उत्पन्न होता है उस अनेक प्रकार के दुःखको सुख मान लेता दुःख सुखका अंग है इसके

विन सुख नहीं मिल सक्ता सुखके ज्ञान से बुद्धि नष्ट होती इससे जन्मता मरता संसार से पार नहीं होता इसलिये इस सुख ज्ञान का विरोधी दुःख संभावनका उपदेश किया जाता है।

दुःख के पीछे अपवर्ग की परीक्षा करने के लिये पूर्व पक्ष करता है।

ऋणक्लेशप्रवृत्त्यनुबंधादपवर्गाभावः ॥५९॥

ऋणक्लेश प्रवृत्ति इनके अनुबंध से अपवर्गका अभाव होजायगा इस का आशय यह है कि जायमान ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणी कहाता है ब्रह्मचर्य से ऋषि यज्ञ से देव और संतान से पितरोंका ऋणी होता है यह शास्त्र की आज्ञा है और यहभी कहाहै कि यावज्जीवन अग्नि होत्र करना चाहिये तब ऋणके मृत्यु पर्य्यन्त संबन्ध होनेसे अपवर्ग के अनुष्ठान करने को समय ही न रहा फिर मुक्ति कैसी क्लेशों के अनुबन्ध से अपवर्गका अभाव है क्योंकि क्लेशों से बन्धा हुआ यह देही उत्पन्न होता है इसलिये क्लेश संयोग का विच्छेदक भी नहीं होता प्रवृत्ति के अनुबन्ध से भी अपवर्ग का अभाव सिद्ध होता क्योंकि जन्म से लेकर मरण तक वाक् बुद्धि शरीर की प्रवृत्ति से रहित यह कभी नहीं होता है इसलिये दुःख "जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनंतराभावादपवर्गः" (इस सूत्र का अर्थ पहिले लिखदिया है वहीं देख लेना) यह जो कहाथा सो युक्त नहीं इस पूर्वपक्षका समाधान करते हैं

प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनानुवादो निन्दा प्रशंसोपपत्तेः ॥६०॥

प्रधान शब्द की अनुपपत्ति होनेसे निन्दा और प्रशंसा के लिये गौण शब्द से अनुवाद किया है अर्थात् जहां कोई पीछा लेने के लिये देता है और जो फिर लौटा देनेके लिये लेता है वहां ऋण शब्दका व्यवहार मुख्य है यहां यह बात नहीं लगसक्ती इसलिये प्रधान शब्द की अनुपपत्ति से यह अनुवाद गुण शब्दसे किया गया है अर्थात् ऋणके तुल्य जैसे किसी ने कहा कि यह बालक अग्नि है तो उसका अभिप्राय

यही जाना जायगा कि आग के समान तेज है क्योंकि बालक साक्षात् अग्नि नहीं हो सक्ता इसलिये अग्नि शब्दका प्रधान अर्थ नहीं लेसक्ते तो गौण अर्थ यानी अग्नि समान यह लिया गया यदि कहो कि गौण शब्द का प्रयोग क्यों किया तो इसका समाधान यही है कि निन्दा और स्तुतिके लिये जैसे ऋणी ऋण के न देने से निन्दा का पात्र होता वैसे कर्म के त्याग ने से निन्दित होता है तथा कर्म करने से ऋण के देने से ऋणी के समान मनुष्य प्रशंसा योग्य होता है "जाय मानो हवै ब्राह्मण स्त्रिभिर् ऋणै ऋणवान् जायते" इस वाक्य में जायमान यह पद भी गौण है अर्थात् जब यह गृहस्थ होता तब उक्त ऋणों से युक्त होता क्योंकि माता के पेट से जो जायमान बालक उसका तत्काल अधिकार ही नहीं है जो अर्थी और समर्थ है उसीका अधिकार कर्म करने में है स्वर्ग की जिसे इच्छा हो वह अग्नि होत्र करै ऐसी शास्त्र की आज्ञा है और समर्थ पुरुष की कर्म में प्रवृत्तिका संभव है अशकृत की नहीं यदि जायमान शब्द का प्रधान अर्थ माता से उत्पन्न बालक लिया जाय तो उस में अर्थीपन और शकृति दोनों का संभव नहीं बिचार पूर्वक कर्म कारी पुरुषसे उक्त होनेके कारण वैदिक वाक्य लौकिक वाक्यसे विरुद्ध नहीं होते अपरीक्षकभी कोई लौकिक तत्काल उत्पन्नहुए बालकको पढ़ यज्ञ कर और ब्रह्मचर्य धारणकर ऐसा न कहेगा फिर उचितऔर निर्दोष कथन करनेवाला ऋषि ऐसा अनुचित उपदेश करै यह कब हो सकता है नाचने वाला अन्धोंको नाच नहीं दिखाता और गाने वाला वैहिरों को गीत नहीं सुनाता जो उपदिष्ट अर्थ को जानता उसके प्रति उपदेश कियाजाता है इत्यादि और भी विशेष भाष्य में लिखा है पर बिस्तार के भय से नहीं लिखा ।

अधिकाराच्च विधानं विद्यांतरवत् ॥६१॥

अधिकार से विधान होता है अन्य विद्याओं की नाईं अर्थात् जैसे अन्य शास्त्र अपने २ अधिकार में प्रत्यक्ष विधायक हैं न कि अर्थान्तर के न होने से ऐसे ही गृहस्थ शास्त्र यह ब्राह्मण अपने २ अधिकार में प्रत्यक्ष विधान करता कुछ अन्य आश्रम के अभाव से नहीं ऋग्वेद और ब्राह्मण अपवर्ग केविधायक हैं ऋग् जैसे "कर्मभिर्मृत्युमृष-

यो निषेदुः प्रजावन्तो द्रविणमिच्छमानाः अथापरे ऋषयो मनीषिणः परं कर्म्मभ्योऽमृतमानशुः न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागनै केऽमृतत्व मानशुः परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशंति,, इत्यादि और भी हैं इन मंत्रों का सारांश यह हैकि प्रजावान द्रव्य की इच्छा रखने बाले ऋषि मृत्यु को प्राप्त हुये और दूसरे विचारबान ऋषि मोक्ष के भागी हुए अब ब्राह्मण "त्रयो धर्म स्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनंदान मिति प्रथमस्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचार्य्याचार्य कुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एवैते पुण्य लोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्व मेति । एतमेव प्रव्राजिनो लोकमभीप्सन्तः प्रव्रजन्ति" इत्यादि बहुत से वाक्य हैं इनका सारांश यही है कि कर्त्ता जिस कामनासे कर्म करता है उसको प्राप्त होता इस प्रकार कर्म से संसार प्राप्ति और निष्काम को मोक्ष प्राप्ति होती है इससे सिद्ध हुआ कि ऋण के अनुबन्ध से अपवर्ग का अभाव होजायगा यह कथन ठीक नहीं है ।

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः ॥६२॥

आत्मा में अग्नि के समारोपण करने से प्रतिषेध ठीक नहीं ऐसी वेदकी आज्ञा है कि प्रजापति यज्ञकर उसमें सार्ववेद होमकर आत्मा में अग्नियों का समारोपकर ब्राह्मण संन्यासले इससे जाना जाता है कि सन्तान धन और स्वर्गादि की इच्छा त्याग कर भिक्षाचरण करते हैं इच्छारहित को पात्रचयपर्य्यन्त कर्म नहीं होसक्ते इससे उनका फल भी नहीं होता है ।

इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र में चार आश्रमों के बिधान होने से एक ही आश्रम नहीं होसकता यदि कहो इतिहासादिकों का प्रमाण नहीं तो यह कदापि सिद्ध नहीं होसकता क्योंकि प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थ ने इनको प्रमाण माना है यथा "(तेवा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहास पुराण मभ्यवदन् इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेद इति)" इस ब्राह्मण ग्रन्थ से इतिहास पुराणका प्रामाण्य स्पष्ट सिद्ध होता है और धर्मशास्त्र को प्रमाण न मानोंगे तो प्राणियों

के सब व्यवहारों के लोप होने से जगत् नष्ट होजायगा और संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थ के जो द्रष्टा और व्याख्यान कर्त्ता हैं वही इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र के भी हैं विषयों की व्यवस्था से अपने २ विषय में प्रामाण्य है जैसे इंद्रियों की प्रमाणता अपने २ विषय में अलग अलग है रूप के प्रत्यक्ष में आंख को गन्ध के प्रत्यक्ष में घ्राण को ऐसे ही और इंद्रियों का भी प्रमाणत्व समझ लो ऐसे ही यज्ञ संहिता और ब्राह्मण का विषय लोक वृत्तान्त इतिहास और पुराण का और लोक व्यवहार की व्यवस्था धर्मशास्त्र का विषय है फिर जो यह कहा था कि क्लेश के लगातार रहने से अपवर्ग का होना असम्भव है इसका खण्डन अगले सूत्र से करते हैं ।

सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गः ॥६३॥

जैसे सोते हुये पुरुष को स्वप्न के अदर्शन से दुख नहीं होता वैसेही ज्ञानी को रागादि के अभाव से अपवर्ग में भी सुख और दुखका सम्बन्ध नहीं रहता यह ब्रह्मवेत्ता मुक्तात्मा का रूप दिखलाया है ।

न प्रवृत्तिः प्रतिसंधानाय हीनक्लेशस्य ॥६४॥

रागद्वेष और मोह जिसके निवृत्त होगये हैं उसकी प्रवृत्ति बंधन का कारण नहीं होती ।

न क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात् ॥६५॥

क्लेशसंतति के स्वाभाविकत्व से क्लेशानुबंध का बिच्छेद नहीं होसक्ता अर्थात् यह रागादि परम्परा अनादि है इसलिये इसका अभाव नहीं होसकता कोई एक देशी इसका समाधान करता है ।

प्रागुत्पत्तेरभावानित्यत्ववत्स्वाभाविकेऽप्यनित्यत्वम् ॥ ६६ ॥

जैसे उत्पत्ति के पूर्व अनादि प्रागभाव उत्पन्न भाव से निवृत्त होजाता है वैसेही स्वाभाविक क्लेशसंतति भी अनित्य है ।

अणुश्यामताऽनित्यत्ववद्वा ॥ ६७ ॥

दूसरा कहताहै कि जैसे अनादि अणुश्यामता अग्नि संयोगसे अनित्य होजाती वैसेही क्लेश परंपरा भी अनित्य है भावरूप पदार्थका नित्यत्व और अनित्व धर्महै अभावमें गौणहै परमाणुश्यामता अनादि है इसमें हेतुनहोनेसे ठीक नहीं अनुत्पत्तिधर्मक अनित्यहै इसमें कोई हेतु नहीं सिद्धान्ती समाधानकरताहै ।

न संकल्पनिमित्तत्वाच्च रागादीनाम् ॥ ६८ ॥

रागादिकों का निमित्त संकल्पहै इसलिये उक्तकथन यथार्थ नहींहै अर्थात् तत्वज्ञानहोनेसे सबप्रकारके मिथ्या संकल्प उत्पन्न नहींहोते फिर कारण के उत्पन्न नहोनेसे कार्य भी उत्पन्न नहीं होता इसलिये रागादिकों की सर्वथा उत्पत्ति नहीं होतीहै फिर अपवर्ग होना सहजहै ।

अपवर्ग की परीक्षा करके अब अपवर्गका क्या कारणहै यह बतलाने के लिये भूमिका बांधतेहैं क्या संसार में जितने विषयहैं उनमें प्रत्येक ज्ञान उत्पन्न होता या कहीं २ पहिला पक्ष ठीक नहीं क्योंकि ज्ञेय वस्तुओं के अनंत होने से यावद्विषयक ज्ञान नहीं होसक्ता कहीं २ उत्पन्न होताहै यह कहना भी युक्त नहीं क्योंकि जहां ज्ञान उत्पन्न नहुआ वहां मोह रहजायगा अन्य विषयक तत्वज्ञानसे अन्य विषयका मोह दूर होना कठिनहै मिथ्याज्ञानका नाम मोहहै नकि तत्वज्ञान की अनुत्पत्ति मात्र को मोह कहते हैं और वह मिथ्या ज्ञान जिस विषय में विद्यमान होकर संसार का बीज है उस विषय को तत्व से जानना चाहिये अनात्मवस्तु में आत्म ज्ञान को मिथ्या ज्ञान कहते हैं और वह शरीर इन्द्रिय मन आदिकों में आत्मा का अभिमान करना है और यही संसार का बीज है क्योंकि शरीर आदि पदार्थों में आत्मा का अहंकार कर उन के नाश से आत्मा का नाशमान शरीरादि के नाश न होने की तृष्णा से पूर्ण पुनः पुनः उन का ग्रहण करता हुआ जन्म मरण के लिये यत्न करता है उसके साथ वियोग न होने से दुःखसे अत्यन्त छूटना नहीं होता और जो दुःख दुःखायतन और दुःख संयुक्त सुख यह सब दुःख रूप ही हैं ऐसा जानता है उसका दुःख विषमिले अन्न की भांति ग्रहण न करने से हीन होजाता है क्योंकि दोषों के

हीन न होने से दुःख के प्रबन्ध का उच्छेद नहीं होसक्ता इसलिये दोषों को छोड़ता है दुःखों के हीन होने से प्रवृत्ति प्रति संधान के लिये नहीं होती ऐसा कहा है कर्म और दोष त्याज्य मुक्ति उपार्जन योग्य और उसके संपादन करने का उपाय तत्व ज्ञान है इस रीति से चार प्रकार से विभक्त प्रमेय की भावना करने वाले को सम्यक दर्शन अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसका यथार्थ ज्ञान होताहै ।

दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहङ्कारनिवृत्तिः ॥६९॥

दोषके निमित्तोंके तत्वज्ञानसे अहंकारकी निवृत्ति होती है अर्थात् शरीरादि दुःखांत प्रमेय दोष के निमित्त हैं क्योंकि तद्विषयक ही मिथ्या ज्ञान उत्पन्न होताहै इसलिये इन विषयों में उत्पन्न अहंकार को यह तत्वज्ञान दूर करता है क्योंकि समानविषय में उनका विरोध है इस प्रकार तत्व ज्ञान से दुःख जन्म प्रवृति दोष और मिथ्या ज्ञान इनके उत्तरोत्तर नष्ट होने से उसके अनंतर के अभाव से अपवर्ग होता है अर्थात् तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति उस की निवृत्ति से दोषों की निवृत्ति उससे प्रवृत्ति की प्रवृत्तिके अभाव से जन्म की निवृत्ति और जन्म के अपाय से दुःख का नाश होता है इसी को मुक्ति कहतेहैं ।

दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः ॥७०॥

कामके विषय इन्द्रियों के अर्थ रूपादि कहे जाते हैं वह मिथ्या संकल्प किये हुए राग द्वेष और मोह को उत्पन्न कराते हैं प्रथम उनका त्याग करे उन के त्याग करने वाले का रूपादि विषयों में मिथ्या संकल्प दूर होताहै उसके निवृत्त होने पर अध्यात्मशरीरादिकों का प्रत्याख्यानकरे उनके प्रसंख्यानसे अध्यात्म विषयक अहंकार निवृत्त होता है फिर यह भीतर.बाहिरसे विरक्त चित्त होकर विचरता मुक्त कहा जाता है इस के अनंतर कोई संज्ञा त्यागनी चाहिये और कोई विचार योग्य है इसका उपदेश करते हैं ।

तन्निमित्तन्त्ववयव्यभिमानः ॥७१॥

उन दोषोंका कारण अवयवीका अभिमान है और वह परिष्कार सहित स्त्री संज्ञा पुरुषको और पुरुष संज्ञा स्त्री को निमित्त संज्ञा और अनुव्यंजन संज्ञा को परिस्कार कहते दांत ओठ आंख नाक यह निमित्त संज्ञा कहाती ऐसे ओठ ऐसे सुंदर दांत और वह सुआ की सी ऊंची नाक इसको अनुव्यंजन संज्ञा कहते जिस की भावना करने से राग उत्पन्न होता और उससे दोषोंकी उत्पत्ति होती इसके छोड़नेकी रीति यह है कि स्त्री के शरीर में विचार करे कि इसमें केश मास रुधिर हाड कफ इत्यादि घृणित पदार्थ को छोड़ और कुछ नहीं है ऐसी भावना करने से राग दूर होता है फिर दोषों की उत्पत्ति नहीं होती है द्विविध विषय में कोई संज्ञा विचार योग्य और कोई त्याज्य है यह उपदेश किया है ।

विद्याऽविद्याद्वैविध्यात् संशयः ॥७२॥

विद्या और अविद्या के द्वैविध्यसे संदेह होता है कि अवयवी अवयवों से भिन्न है वा नहीं ।

तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् ॥७३॥

द्वितीयाध्याय में उक्त हेतु प्रसिद्ध होनेसे अवयवी में संदेह नहीं होसक्ता अर्थात् अस्ति द्रव्यान्तरारम्भ इत्यादि प्रतिज्ञा और उसके साधक हेतु दूसरे अध्याय में कहचुके हैं इसलिये अवयवी में संदेह करना उचित नहीं ।

वृत्त्यनुपपत्तेरपि तर्हि न संशयः ॥७४॥

तो वृत्तिकी अनुपपत्तिसे भी नास्ति अवयवी इस संदेह की अनुपपत्ति होती है अर्थात् जब अवयवी का अभाव सिद्ध होगया तब संदेह कैसा इसी बात को अगले सूत्रसे सिद्ध करते हैं ।

कृत्स्नैकदेशावृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः ॥७५॥

एक एक अवयव संपूर्ण अवयवी में नहीं रहसक्ता क्योंकि उनके

परिमाण में भेद है अवयवी बड़ा और अवयव छोटा और न एक देश से रहता क्योंकि दूसरे अवयव तो हैं ही नहीं जिन से वर्ते ।

तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः ॥७६॥

उनमें अप्रवृत्ति होनेसे अवयवी का अभाव होता है अवयव और अवयवी के परिमाण में भेद होनेसे प्रति अवयव में अवयवी नहीं रहसक्ता और न एक देश से ही रहसक्ता क्योंकि अन्य अवयव तो हैं ही नहीं इस प्रकार अवयवी के होने में संदेह सिद्ध होगया ।

पृथक् चावयवेभ्योऽवृत्तेः ॥७७॥

धर्मी अवयवों से पृथक् धर्म का ग्रहण न होने से अवयवी सिद्ध नहीं होता है ।

न चावयव्यवयवाः ॥७८॥

और अवयव अवयवी का तादात्म्य अर्थात् अभेद भी नहीं होसक्ता है ।

एकस्मिन् भेदाभावाद्भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेरप्रश्नः ॥७९॥

प्रति अवयव सब अवयवी वर्त्तमान रहता है अथवा एक देश से यह प्रश्न युक्त नहीं क्योंकि एक में भेद न होने से भेद शब्द का प्रयोग करना ठीक नहीं अनेक को अशेषता का अभिधान कार्त्स्न्य कहाता अनेकत्व रहते किसी एक के अभिधान का नाम एक देश है यह कृत्स्न और एकदेश शब्द भेद विषयकहैं एक अवयवीमें भेद न होनेसे उत्पन्न नहीं होसक्ते हैं ।

अवयवान्तराभावेप्यवृत्तेरहेतुः ॥८०॥

यद्यपि एक देश अवयवांतर भूत होगा तथापि अवयव की अवयवांतर में वृत्ति होगी अवयवी की नहीं इसलिये अवयवांतराभावादवृत्तेः यह हेतु उचित नहीं तो फिर वृत्ति कैसे एककी अनेक में आ-

श्रयाश्रयि संबंध रूप प्राप्ति ही वृत्ति है जिस की जिससे अन्यत्र स्वरूप लाभ की अनुपपत्ति हो उसे आश्रय कहते हैं कारण द्रव्य से दूसरे स्थान में कार्य द्रव्य आत्म स्वरूप को प्राप्त नहीं करता कारण द्रव्य में इस के उलटा है इसलिये अवयवी के अभिमान का निषेध किया जाता है मुक्ति की इच्छा रखनेवाले को अवयवी नहीं जिससे रूप आदिकों में मिथ्या संकल्प न हो इस पर यह भी दोष आजायगा कि अवयवी की असिद्धि से सब का अग्रहण होजायगा इस शंका का समाधान पूर्व पक्षी करता है ।

केशसमूहे तैमिरिकोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ॥८१॥

अंधकार से आवृत नेत्रसे जैसे केश समूह का प्रत्यक्ष होता है वैसेही एक परमाणु के प्रत्यक्ष न रहते भी परमाणु पुंज रूप घट का ज्ञान होजायगा अर्थात् जैसे तिमिराच्छादित आंखसे एक बालका प्रत्यक्ष नहीं होता और बालों के समुदाय का साक्षात्कार होजाता है वैसे ही परमाणुओं के प्रत्यक्ष न रहते भी उन के समूह का प्रत्यक्ष होजायगा इसलिये यह ज्ञान परमाणु समूह विषयक है इन से अलग अवयवी वस्तु कुछ नहीं है ।

स्वविषयानतिक्रमेणेन्द्रियस्य पटुमंदभावाद्विषयग्रहणस्य तथाभावो नाविषये प्रवृत्तिः ॥ ८२ ॥

अपने अपने विषय में इंद्रियों की पटुता और मंदत्व से विषय ज्ञान में पटुता और मंदत्व होते हैं नेत्र कैसे ही उत्कृष्ट क्यों न हो पर अपने अविषय गंध का ग्रहण कभी नहीं कर सक्ते ऐसे ही निकृष्ट होने से भी अपने विषय से रहित नहीं होते परमाणु अतीन्द्रिय पदार्थ हैं उन का किसी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं होसकता यदि परमाणु समुदाय का ज्ञान मानोगे तो अविषय में इंद्रिय की प्रवृत्ति माननी पड़ेगी जो सर्वथा असंभव है इसलिये द्रव्यांतर सिद्ध होता है जिस का इंद्रिय से ग्रहण होता है ।

अवयवावयविप्रसंगश्चैवमाप्रलयात् ॥ ८३ ॥

जो अवयवों में वृत्ति के निषेध करने से अवयवी का अभाव सिद्ध हो तो अवयव का अवयवों में वृत्ति प्रतिषेध से सब का अभाव होजायगा अथवा निरवयवपन से परमाणुत्व की निवृत्ति होजायगी ।

न प्रलयोऽणुसद्भावात् ॥ ८४ ॥

परमाणु सद्‌भाव से अभाव नहीं होसक्ता अर्थात् अवयव विभाग का आश्रय लेकर वृत्ति के प्रतिषेध से अभाव प्राप्त हुआ वह निरवयव परमाणु से निवृत्त हो सब का अभाव सिद्ध नहीं करसक्ता परमाणु का निरवयवत्व सिद्ध है क्योंकि एक ढेले के टुकड़े करते चले जाओ अंत में सब से छोटा होगा जिस का फिर विभाग नहीं होसक्ता वही निरवयव परमाणु वस्तु है अर्थात् परमसूक्ष्म जिससे अल्प न हो ।

परं वा त्रुटेः ॥ ८५ ॥

अथवा त्रुटी से जो पर है वह परमाणु कहाता है । अब शून्यवादी परमाणु के निरवयवत्व पर आक्षेप करता है ।

आकाशव्यतिभेदात् तदनुपपत्तिः ॥ ८६ ॥

आकाश के व्यति भेद से निरवयव परमाणु की उपपत्ति नहीं हो सक्ती अर्थात् परमाणु भीतर और बाहर से आकाश से व्याप्त होने से सावयव है अैार सावयव होने से अनित्य हुआ ।

आकाशासर्व्वगतत्वं वा ॥ ८७ ॥

परमाणु के भीतर आकाश नहीं है ऐसा कहोगे तो आकाश को असर्वगतत्व होजायगा अर्थात् आकाश की सर्वत्र व्याप्ति न रहेगी ।

अन्तर्वहिश्च कार्य्यद्रव्यस्य कारणान्तर वचनादकार्य्ये तदभावः ॥ ८८ ॥

कार्य्य द्रव्य के भीतर बाहर कारणान्तर के वचन से अकार्य में उन का अभाव है अर्थात् भीतर बाहर यह व्यवहार कार्य द्रव्य में होता है कार्यरूप रहित परमाणु में भीतर बाहर इस व्यवहार का अभाव है क्योंकि जिस से छोटा नहीं वही परमाणु है ।

सर्व्वसंयोगशब्दविभवाच्च सर्व्वगतम् ॥ ८९ ॥

संयोग और शब्द आकाश में सर्वत्र होते हैं ऐसा कोई भी मूर्त्तिमान द्रव्य नहीं जो आकाश से संयुक्त न हो इसलिये आकाश में असर्वगतत्व नहीं आसक्ता ।

अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्म्माः ॥९०॥

अव्यूह अविष्टम्भ और विभुत्व यह आकाश के धर्म हैं काष्ठ से जल की नाईं अप्रतिघाती द्रव्य से व्यूहन नहीं होता निरवयव होने से रोक होने से लौटने को व्यूह कहते हैं आकाश निरवयव है इसलिये प्रतिघाती नहीं और स्पर्शवान् न होने से आकाश इस के क्रिया जनक गुण को रोकता नहीं उत्तर देश में गति के प्रतिबन्ध को विष्टंभ कहते हैं इसलिये तुम को स्पर्शवान द्रव्यमें देखे हुए धर्म की शंका स्पर्श रहित वस्तु में न करनी चाहिये कारण के विभाग से कार्य का अनित्यत्व होता न कि आकाश के समावेश से अवयवों के विभाग होने से मृत् पिंड अनित्य कहाता आकाश के समावेश से नहीं ।

मूर्त्तिमतां च संस्थानोपपत्तेरवयवसद्भावः ॥ ९१ ॥

परिछिन्न स्पर्श वाले पदार्थों के त्रिकोण चौकोन सम अैार गोल आकार होते हैं जो आकार है वह अवयव रचना है परमाणु गोल हैं इसलिये सावयव होने चाहिये ।

संयोगोपपत्तेश्च ॥ ९२ ॥

संयोग की उपपत्ति से भी परमाणुअेां का सावयवत्व सिद्ध होता है परमाणु मध्य में रह कर इधर उधर के परमाणुओं से संयुक्त हो उन के बीच में व्यवधान अर्थात् भेद कराता है इससे अनुमान होताकि पूर्व भाग से पूर्व पर भाग से पर अणु संयुक्त होता है जो पूर्व अैार अपर भाग हैं वह उस के अवयव हैं इसी प्रकार सब ओर से जो संयुक्त है उस के सब ओर अवयव हैं ।

अनवस्थाकारित्वादनवस्थानुपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ॥ ९३ ॥

जितना मूर्त्तिमान पदार्थ और जो संयुक्त होता है वह सब सावयव है यह हेतु अनवस्थाकारी है और वह अनवस्था युक्त नहीं अवस्था रहते हेतु यथार्थ होते हैं इसलिये निरवयवत्व का निषेध नहीं होसक्ता अनवस्था होने से प्रत्यधिकरण द्रव्यावयवों के अनन्तत्व से परिमाण भेद और गुरुता का ग्रहण न होगा अर्थात् अवयवी और अवयव को तुल्य परिमाणत्व होजायगा ।

बुद्ध्या विवेचनात्तु भावानां याथात्म्यानुपलब्धिस्तन्त्वपकर्षणे पटसद्भावानुपलब्धिवत् तदनुपलब्धिः ॥ ९४ ॥

बुद्धि से विवेचन करने से पदार्थों के वास्तविकत्व की उपलब्धि नहीं होती जैसे यह तन्तु यह तन्तु इस प्रकार हरेक तंतु के विवेचन करने से कोई दूसरा पदार्थ उपलब्ध नहीं होता जो पट बुद्धि का विषय ठहरे यथार्थ उपलब्धि न होने से विषय न रहते जो पट बुद्धि होती है वह मिथ्या ज्ञान है ऐसाही सर्वत्र जानना चाहिये ।

व्याहतत्वादहेतुः ॥९५॥

व्याहत होने से उक्तहेतु ठीक नहीं जो भावों की विवेचना बुद्धि से कीजाय तो सब भावों की याथात्म्य की अनुपलब्धि नहीं और जो सब भावों के याथात्म्य की अनुपलब्धि तो बुद्धिसे विवेचन नहीं अर्थात् उक्त दो बात परस्पर विरोधी होने से एकत्र नहीं रहसक्तीं ।

तदाश्रयत्वादपृथग्ग्रहणम् ॥९६॥

कार्य्य द्रव्य कारण द्रव्य के आश्रित रहता है इसलिये कारणों से पृथक् उपलब्ध नहीं होता विपर्यय में पृथक् ग्रहण होनेसे जहां आश्रयाश्रितभाव नहीं है वहां पृथक् ग्रहण होता है इसलिये बुद्धिसे विवेचन करने से पदार्थों का भेद ज्ञात होता है ।

प्रमाणतश्चार्थप्रतिपत्तेः ॥९७॥

प्रमाण से अर्थ की सिद्धि होती है जो प्रमाण से उपलब्धि है वह भावों का बुद्धि से विवेचन है उससे सब शास्त्र सकल काम और सारे देह धारियों के व्यवहार व्याप्त हैं परीक्षा करने वाला बुद्धि ही से यह है और यह नहीं है इस का निश्चय करता है ।

प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ॥९८॥

ऐसा होने से सब नहीं है यह सिद्ध नहीं होता प्रमाण की उपपत्ति और अनुपपत्ति से जो सब नहीं है इसमें प्रमाणहै तो सब नहीं यह कहना ही अनुचित है क्योंकि जब प्रमाण पदार्थ विद्यमान है तब सब नहीं यह कहना बाधित है जो कहो प्रमाण नहीं तो बताओ कि सब नहीं इसकी सिद्धि क्यों कर हुई यदि कहो कि बिना प्रमाण ही सिद्धि होती है तो सब है इसकी भी सिद्धि क्यों नहीं ।

स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ॥ ९९ ॥

जैसे स्वप्न में विषय नहीं हैं और अभिमान होता है इसीप्रकार प्रमाण और प्रमेय कुछ नहीं हैं पर प्रमाण प्रमेय का अहंकार होता है

मायागंधर्वनगरमृगतृष्णिकावद्वा ॥१००॥

अथवा माया गंधर्व नगर वा मृगतृष्णा की नाईं प्रमाण प्रमेय भाव है अर्थात जैसे यह मिथ्या हैं वैसे ही प्रमाण प्रमेय भाव भी कल्पित है ।

हेत्वभावादसिद्धिः॥१०१

हेतुके अभाव से वाह्य विषयका अभाव सिद्ध नहीं होसक्ता स्वप्न में असत विषय उपलब्ध होते हैं इसमें भी हेतु नहीं है जो कहो जागने पर उपलब्ध नहीं होते इसलिये नहीं हैं तो हम कहेंगे यदि जागने पर उपलब्धि नहोने से स्वप्न में विषय नहीं हैं तो जो यह

बिषय जागे हुए मनुष्य को उपलब्ध होते हैं वह सत्य हैं बिपर्यय में हेतु की शक्ति है अर्थात् जाग्रत् अवस्था के अनुपलम्भ से जो स्वप्न में विषयों का अभाव सिद्ध करोगे तो जाग्रत् अवस्था के उपलंभ से विषयों का सत्यत्व सिद्ध होजायगा ।

स्मृतिसङ्कल्पवच्च स्वप्नविषयाभिमानः ॥१०२॥

स्मृति और संकल्प की भांति स्वप्न विषय का अभिमान है जैसे पूर्व उपलब्ध विषयक स्मृति और संकल्प उस के खंडन करने में समर्थ नहीं होते वैसे ही स्वप्न में विषय का ज्ञान पूर्व उपलब्ध विषय के खंडन में समर्थ नहीं होता जो सोता हुआ स्वप्न देखता है वही जग कर स्वप्न दर्शनों का प्रतिसंधान करता है कि यह मैं ने देखा वहां जाग्रत् बुद्धि वृत्ति के कारण स्वप्न विषय का अभिमान मिथ्या है यह व्यवसाय होता है स्वप्न और जागरण में कुछ भेद न होता तो साधन अनर्थक होता जो धर्म जिस वस्तु में नहीं है उस धर्म का उस वस्तु में बोध होना प्रधान के आधीन है अपुरुष खंभे में पुरुष बुद्धि होना प्रधान के आश्रय है क्योंकि पुरुष की उपलब्धि के विना पुरुष भिन्न में पुरुष का ज्ञान कभी नहीं हो सकता इसी प्रकार स्वप्न में हस्ती पर्वत आदि का दर्शन प्रधान के आश्रय होना चाहिये ।

मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्वज्ञानात् स्वप्नविषयाभिमानप्रणाशवत् प्रतिवोधे ॥१०३॥

जागने पर स्वप्न विषयक अभिमान का नाश जैसे हो जाता है वैसे ही तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान का नाश होता है जो धर्म जिस वस्तु में नहीं है उस में उस के ज्ञान को मिथ्या ज्ञान कहते हैं जैसे खंभे में यह पुरुष है और जो पदार्थ जैसा है उस को वैसाही समझना तत्व ज्ञान कहाता जैसे खंभे को खंभा समझना वैसे ही इन्द्रजाल गंधर्वनगर और मृगतृष्णा के ज्ञान भी मिथ्या ही हैं ।

बुद्धेश्चैवं निमित्तसद्भावोपलम्भात् ॥१०४॥

अर्थ की नाईं मिथ्या बुद्धिका भी निषेध नहीं होसक्ता क्योंकि मिथ्या बुद्धि का कारण और उस की सत्ता दोनोंकी उपलब्धि होतीहै प्रत्येक पुरुष को मिथ्या बुद्धि का ग्रहण होता है इसलिये मिथ्या बुद्धि भी है ।

तत्वप्रधानभेदाच्च मिथ्याबुद्धेर्द्वैविध्योपपत्तिः ॥१०५॥

तत्व और प्रधान के भेद से मिथ्या बुद्धि दो प्रकारकी है खंभा तत्व है और प्रधान पुरुष इनमें भेद होने से खंभेमें पुरुष यह मिथ्या बुद्धि अर्थात् भ्रम उत्पन्न होता है सामान्यके ज्ञान से समान विषयमें मिथ्या बुद्धियोंका समावेश नहीं होसक्ता गंधादि प्रमेयमें गंधादि बुद्धि मिथ्या अभिमतहैं वह तत्व और प्रधान में सामान्य ग्रहण के अभावसे तत्व बुद्धिही होती हैं इसलिये प्रमाण और प्रमेय बुद्धि मिथ्या हैं यह कहना अयुक्त है ।

समाधिविशेषाभ्यासात् ॥१०६॥

समाधि विशेष के अभ्यास से तत्व ज्ञान उत्पन्न होताहै इंद्रियों से प्रत्याहृत मन के धारण प्रयत्न से तत्व जानने की इच्छासे आत्माके साथ संयोग को समाधि कहते हैं उसके होने से विषय बुद्धि उत्पन्न नहीं होती और उसके अभ्यास करने से तत्वज्ञान होता है ।

नार्थविशेषप्रावल्यात् ॥१०७॥

अर्थ विशेष की प्रवलता से समाधि विशेष नहीं होसक्ता ज्ञानेच्छा न रहते भी विजली के शब्द प्रकाश आदि पदार्थों का ज्ञान हो जाता है ।

क्षुदादिभिःप्रवर्त्तनाच्च ॥१०८॥

भूख प्यास शीत और उष्णता तथा रोगादि के कारण बुद्धि उत्पन्न होजाती हैं इसलिये मन की एकाग्रता नहीं हो सक्ती ।

पूर्वकृतफलानुवन्धात् तदुत्पत्तिः ॥१०९॥

अन्य जन्ममें संपादित तत्वज्ञान के कारण धर्म विशेष के फलानुवंध से समाधि की उत्पत्ति होगी जो अभ्यास निष्फल होता तो वि-

वेकी पुरुष अभ्यास का आदर कभी नहीं करते क्योंकि लौकिक कार्मों में विघ्न दूर करने की शक्ति अभ्यास में देखी जाती है ।

अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोप-देशः ॥११०॥

बन गुफा नदी तीर आदि स्थानों में योगाभ्यासका उपदेश किया है योगाभ्यास से उत्पन्न हुआ धर्म दूसरे जन्म में भी बना रहताहै तत्व ज्ञान का कारण धर्म जब अति उत्कृष्ट दशा को पहुंचता है और समाधिभावना बहुत बढ़ जाती तब तत्व ज्ञान होता है ऐसा लोक में देखा जाता है कि यह मैंने नहीं सुना इसका ज्ञान मुझे नहीं हुआ मेरा मन और ठिकाने लगा था ।

अपवर्गेऽप्येवंप्रसंगः ॥१११॥

मोक्ष में भी वाह्य अर्थ के सामर्थ्य से ज्ञान उत्पन्न होजायंगे इस शंका का समाधान अगले सूत्र से होगा ।

न निष्पन्नावश्यम्भावित्वात् ॥११२॥

कर्म वश से चेष्टा इंद्रिय और अर्थ के आधार शरीर के उत्पन्न होने से ज्ञानोंकी उत्पत्ति निमित्त रहनेसे अवश्य होती है प्रवल भी वाह्य अर्थ आत्मा को ज्ञान कराने में समर्थ नहीं है इंद्रियों के संयोग से ज्ञानोत्पत्ति कराने में उस का सामर्थ्य देखा जाता है ।

तदभावश्चापवर्गे ॥११३॥

बुद्धि निमित्तका आश्रय जो शरीर और इंद्रिय हैं उनका धर्म अधर्म के न होने से मुक्ति में अभावहै इसलिये मुक्ति समय में भी ज्ञान की उत्पत्ति होजायगी यह कहना उचित नहीं इसलिये सब दुःखोंसे छूटना अपवर्ग है जिस लिये सब प्रकार के दुखों का बीज सब दुःखका आधार अपवर्ग में छिन्न हो जाता है इसलिये सब दुःखोंसे मुक्ति अपवर्ग में होजाती है क्योंकि विना कारण और वे आधार दुःख उत्पन्न नहीं होता है ।

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ॥ ११४ ॥

उस अपवर्ग की प्राप्ति के लिये यम नियमों से आत्मा का संस्कार करना चाहिये जिस से अधर्म की हानि और धर्म की वृद्धि हो योग शास्त्र से अध्यात्म विधि प्राप्त करना तप प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान और धारणा यही विधि हैं ।

ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ॥११५॥

उस के लिये आत्मविद्या का लगातार पढ़ना सुनना और विचार करना तथा आत्म शास्त्र वेत्ताओं के साथ बुद्धि के परिपाक के लिये सर्वदा वार्त्तालाप करना चाहिये उस से संदेह की निवृत्ति अविज्ञात विषय का बोध और निश्चिताभ्यनुज्ञान होता है ।

तं शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयोर्थिभिरनसूयिभिरभ्युपेयात् ॥ ११६ ॥

असूया रहित जो शिष्य गुरु सहाध्यायी प्रकृष्ट ज्ञानवान और मुमुक्षु इन के द्वारा अध्यात्म विद्यावान से समागम करे ।

प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ॥११७॥

दूसरे से ज्ञान का ग्रहण करने चाहता पुरुष तत्व ज्ञान की इच्छा प्रगट कर अपने पक्ष को स्थापन न करता हुआ अपने दर्शन को सोधे अर्थात् स्वप्रयोजन का अर्थी पक्षपात छोड़ तत्व निर्णय करे जब अपने पक्ष का आग्रह होता है तब लोग न्याय का उल्लंघन करने लगते हैं ।

तत्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे वीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत् ॥११८॥

जैसे बीजांकुर की रक्षा के लिये सब ओर से कांटेदार शाखा लगा देते हैं वैसे ही तत्व निर्णय के पालनार्थ जल्प और वितण्डा भी करे यह उपाय उन के लिये है जिन को तत्व का ज्ञान नहीं हुआ और दोष भी दूर नहीं हुए पर उन के लिये उद्योग कर रहे हैं ।

ताभ्यां विगृह्य कथनम् ॥ ११६ ॥

जयेच्छु होकर न कि तत्व ज्ञान की इच्छा से जल्प और वितण्डा के द्वारा वाद करे पर यह भी विद्या की रक्षा के लिये करे लाभ संमान और प्रसिद्धि के अर्थ नहीं ।

इतिमिश्रशालग्रामशास्त्रिविरचितायां न्यायतत्वबोधिन्यां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

साधर्म्य और वैधर्म्य के कारण प्रत्यवस्थान के विकल्प से जाति बहुत है यह संक्षेप से कहा था उस का विस्तार से विभाग करते हैं स्थापना हेतु के प्रयोग करने में प्रतिषेध के कारण यह चौबीस जाति हैं।

साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्तिप्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुत्पत्तिसंशयप्रकरणहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपपत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनित्यानित्यकार्यसमाः ॥ १ ॥

साधर्म्यसम १ वैधर्म्यसम २ उत्कर्षसम ३ अपकर्षसम ४ वर्ण्यसम ५ अवर्ण्यसम ६ विकल्पसम ७ साध्यसम ८ प्राप्तिसम ९ अप्राप्तिसम १० प्रसङ्गसम ११ प्रतिदृष्टान्तसम १२ अनुत्पत्तिसम १३ संशयसम १४ प्रकरणसम १५ हेतुसम १६ अर्थापत्तिसम १७ अविशेषसम १८ उपपत्तिसम १९ उपलब्धिसम २० अनुपलब्धिसम २१ नित्यसम २२ अनित्यसम २३ कार्य्यसम २४ ।

यह चौबीस जाति हैं इन के पृथक् पृथक् लक्षण और उदाहरण आगे लिखेंगे ।

साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामुपसंहारे तद्धर्मबिपर्य्ययोपपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ॥ २ ॥

समान धर्म से उपसंहार होने पर साध्य धर्म से विपर्यय की उपपत्ति से समान धर्म ही से अविशिष्यमाण प्रत्यवस्थान स्थापना

हेतु से साधर्म्यसम प्रतिषेध होता है उदाहरण आत्मा क्रियावाला है द्रव्य को क्रिया हेतु गुण के संबंध से मृत्पिंड क्रिया हेतु गुण से युक्त है और क्रिया वाला है वैसा ही आत्मा है इसलिये क्रिया वाला है ऐसे उपसंहार होने पर दूसरा साधर्म्य ही से निषेध करता है आत्मा क्रिया रहित है विभु द्रव्य को क्रिया रहिततत्व से आकाश विभु है और क्रिया शून्य है वैसाही आत्मा है इसलिये क्रिया रहित है विशेष हेतु कोईहै नहीं क्रियावान के साधर्म्य से क्रियावाला होना चाहिये फिर क्रिया शून्य के साधर्म्य से क्रिया रहित होना इनमें विशेष हेतु के अभाव से साधर्म्यसम प्रतिषेध होता है अब वैधर्म्य सम का दृष्टांत लिखते हैं क्रियाहेतु गुण युक्त मृत्पिण्ड परिच्छिन्न देखा जाता और आत्मा ऐसा नहीं है इसलिये मृत्पिण्डकी नाईं आत्मा क्रियावान नहीं है और विशेष कारण कोई है नहीं कि जिस से क्रियावान के साधर्म्य से क्रियावान होनाचाहिये और क्रियावान के वैधर्म्य से क्रिया रहित न होना सिद्ध होजाय विशेष हेतु न होने से वैधर्म्यसम हुआ और वैधर्म्य से उपसंहार में आत्मा क्रिया शून्य है विभु होने से क्रियावान द्रव्य अविभु देखा गया है जैसा मृत्पिण्ड और आत्मा ऐसा नहीं है इसलिये क्रिया रहित है वैधर्म्य से प्रत्यवस्थान क्रिया रहित द्रव्य आकाश क्रिया हेतु गुण रहित देखा गया है और वैसा आत्मा नहीं है इसलिये क्रिया रहित नहीं है और विशेष हेतु है नहीं कि क्रियावान के वैधर्म्य से निष्क्रिय होना चाहिये न फिर क्रिया शून्य के वैधर्म्य से क्रियावान होना विशेष कारण के अभाव से वैधर्म्यसम प्रतिषेध हुआ इनका उत्तर ।

गोत्वाद्गोसिद्धिवत्तत्सिद्धिः ॥३॥

केवल साधर्म्य अथवा केवल वैधर्म्य से साध्य के सिद्ध करने की प्रतिज्ञा हो तो अव्यवस्था आती है धर्म विशेष में वह नहीं बन सकती गोत्व रूप जाति विशेष से गौ सिद्ध होती न कि सास्नादि सम्बन्ध से अश्वादि वैधर्म्य गोत्व ही से गो सिद्ध होता कुछ गुणादि भेद से नहीं ।

साध्यदृष्टान्तयोर्धर्म्मविकल्पादुभयसाध्य-
त्वाच्चोत्कर्षापकर्षबर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यसमाः॥४॥

दृष्टांत धर्म को साध्य के साथ मिलानेवाले को उत्कर्ष सम कहते हैं जो क्रिया हेतु गुण के योग से लोष्ट की नाईं क्रियावान हो आत्मा हो तो लोष्ट ही की भांति स्पर्शवान भी प्राप्त होता है अब जो कहो कि स्पर्श वाला नहीं तो लोष्ट की नाईं क्रियावान भी सिद्ध नहीं होता विपर्य्यय में विशेष कहना चाहिये साध्य में दृष्टान्त से धर्माभाव के प्रसङ्ग को अपकर्ष सम कहते हैं लोष्ट निश्चय क्रियावान अबिभु देखा गया है बिशेष कर आत्मा भी क्रियावान अविभु होना चाहिये जो ऐसा नहीं तो विशेषता दिखानी चाहिये प्रसिद्ध के योग्य वर्ण्य कहाता और इसके विपरीत अवर्ण्य यह दोनों साध्य दृष्टांत के धर्म हैं विपर्य्यय के वह वर्ण्यावर्ण्य सम कहाते हैं साधन धर्म से युक्त दृष्टांत में धर्मान्तर के विकल्प से साध्य धर्म के विकल्प का प्रसङ्ग करानेवाले का नाम विकल्पसम है क्रिया हेतु गुण युक्त कुछ भारी गुरु होता जैसा लोष्ट कुछ हलका जैसा बायु इसी प्रकार क्रिया हेतु गुण युक्त कुछ क्रियावान हो जैसे लोष्ट कुछ क्रिया रहित होवे जैसा आत्मा अथवा विशेष कहना चाहिये हेतु आदि अवयव साम-र्थ्ययोगी धर्म साध्य होता है उसको दृष्टांत में प्रसङ्ग कराने वाले को साध्य सम कहते जो जैसा लोष्ट है वैसा आत्मा तो प्राप्त हुआ कि जैसा आत्मा वैसा लोष्ट है यह आत्मा क्रियावान साध्य है तो नि-स्सन्देह लोष्ट भी साध्य है यदि ऐसा नहीं तो जैसा लोष्ट वैसा आत्मा यह नहीं हो सकता इनका समाधान।

किञ्चित्साधर्म्म्यादुपसंहारसिद्धेर्वैधर्म्याद-
प्रतिषेधः ॥५॥

सिद्ध वस्तु का छिपाना अलभ्य है कुछ साधर्म्य होने से उपमान होता है जैसे यथा गौ तथागवय वहां गौ और गवय के धर्म विकल्प की शंका प्राप्त हो नहीं सक्ती इसी प्रकार साधक धर्म में जोकि दृष्टां-

तादि सामर्थ्य युक्त है साध्य और दृष्टान्त के विकल्प से वैधर्म्य हेतु प्रतिषेध कहने को अलभ्य है।

साध्यातिदेशाच्चदृष्टान्तोपपत्तेः ॥६॥

साध्य के अतिदेश से दृष्टान्त की उपपत्ति होतीहै जहां लौकिक परीक्षकों की बुद्धिकी समता होती उससे जो विरुद्ध नहींहोताउसी अर्थ का अतिदेश होताहै प्रज्ञापन के अर्थऐसेही साध्य के अतिदेश से दृष्टान्त उपपन्न रहते साध्यता अनुपपन्न है।

प्राप्य साध्यमप्राप्य वा हेतोः प्राप्त्या अ
विशिष्टत्वादप्राप्त्या असाधकत्वाच्च प्राप्त्यप्रा
तिसमौ ॥ ७ ॥

हेतु साध्यको प्राप्तहोकर साध्यको सिद्ध करे वा न प्राप्तहोकर साध्य को पाकर साधक होता यह नहीं कहसक्ते क्योंकि प्राप्ति में विशेषता न होने से असाधक हुआ जब दोनों विद्यमान हैं तो कौन किसका साधक वा कौन साध्य है अप्राप्य साधक नहीं होसक्ता क्योंकि दीप प्राप्त न होकर प्रकाश नहीं करसक्ता प्राप्ति से प्रत्यवस्थान को प्राप्तिसम और अप्राप्ति से प्रत्यवस्थान को अप्राप्तिसम कहते हैं इनका समाधान अगले सूत्र से करते हैं।

घटादिनिष्पत्तिदर्शनात् पीड़ने चाभिचारा
दप्रतिषेधः॥८॥

दोनों प्रकार के प्रतिषेध अयोग्य हैं कर्त्ता करण और अधिकरण मट्टी को पाकर घटादि कार्यों को सिद्ध करते हैं अभिचार से पीडन होने पर दुष्ट को न पाकर साधकता होती है। अर्थात कारण के अधिकरण में कार्य होता है इसके अतिरिक्त और कोई कार्य कारण का सम्बन्ध नियत नहीं है।

दृष्टांतस्य करणानपदेशात् प्रत्यवस्थानाच्चप्र
तिदृष्टांतेन प्रसङ्गप्रतिदृष्टांतसमौ ॥९॥

साधन का भी साधन कहना चाहिये इस प्रसङ्ग में प्रत्यवस्थान को प्रसङ्गसम प्रतिषेध कहते क्रिया हेतु गुण योगी क्रियावान लोष्ठ है इस में हेतुका प्रदर्शन नहीं किया और हेतुके विनासिद्धि होती नहीं प्रति दृष्टांत करके जो प्रत्यवस्थान उसको प्रति दृष्टांतसम कहते क्रियावान् आत्मा क्रिया हेतु गुण के योग से लोष्ठ की नाईं ऐसे कहने पर प्रति दृष्टांत दिया जाता है क्रिया हेतु गुण युक्त आकाश निष्क्रियहै जो कहो आकाश में क्रिया का हेतु गुण कौनसा है तो संस्कार की अपेक्षा रखने वाला वायु के साथ संयोग है वायु और बनस्पति के संयोग की भांति यही प्रति दृष्टांत है विरोधी दृष्टांत का नाम प्रति दृष्टांत है इन का उत्तर

प्रदीपादानप्रसङ्गनिवृत्तिवत्तद्विनिवृत्तिः ॥१०॥

यदि किसी से यह पूछा जाय कि कौन किसलिये दीपक को लेता है तो वह झट पट यही उत्तर देगा कि देखनेकी इच्छावाला देखने योग्य वस्तु के देखने के लिये दीपक लेता है फिर यदि उसी से यह प्रश्न किया जाय कि दीप को देखने वाले दूसरा दीप क्योंनहीं लेते तो तुरंत यही उत्तर देगा कि विन दूसरे दीप के दीप देख पड़ता है फिर दूसरे दीप की आवश्यकता ही क्या है अब यह प्रश्न है कि दृष्टांत क्यों दिया जाता है तो इस का यही उत्तर होगा कि अज्ञात के जताने के लिये अब यदि यह पूछा जावे कि दृष्टांत में कारण का अपदेश क्यों किया जाता तो यही कहने पड़ेगा कि जताने के लिये सो कहना ठीक नहीं क्योंकि दृष्टांत तो पहिले से ज्ञात ही है जिस विषय में लौकिक परीक्षकों की बुद्धि की समता होती वही दृष्टांत होता है उसके जताने को कारणापदेश निरर्थक है यह प्रसंगसमका उत्तर हुआ आगे प्रति दृष्टांतसम का समाधान करते हैं ।

प्रतिदृष्टांतहेतुत्वे च नाहेतुर्दृष्टान्तः ॥११॥

प्रतिदृष्टांत कहनेवाले ने विशेष हेतु नहीं कहा कि इस प्रकारसे प्रति दृष्टांत साधकहै और दृष्टांत साधक नहीं इस भांति प्रति दृष्टांत

हेतुत्व से दृष्टांत अहेतु सिद्ध होता और यह अहेतु क्यों न हो जो साधक अप्रतिषिद्ध हो इसका तात्पर्य यह है कि बिन हेतु प्रति दृष्टांत से दृष्टांत को असाधकत्व नहीं होता ।

प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादनुत्पत्तिसमः ॥१२॥

उत्पत्तिके पूर्व कारण के अभावसे अनुत्पत्तिसम होता है शब्द अनित्य है प्रयत्न की आवश्यकता होने से घट की नाईं ऐसा कहने पर दूसरा कहता है कि उत्पत्ति के पूर्व अनुत्पन्न शब्द में प्रयत्नावश्यकता जो अनित्यत्व की हेतु है वह नहीं है उसके अभाव से नित्यत्व प्राप्त हुआ और नित्य की उत्पत्ति है नहीं अनुत्पत्ति से प्रत्यवस्थान होने से अनुत्पत्तिसम हुआ इसका उत्तर ।

तथाभावादुत्पन्नस्य कारणोपपत्तेर्न कारणप्रतिषेधः ॥१३॥

निश्चय यह शब्द उत्पन्न हुआ ऐसा होता है उत्पत्तिके पहिले शब्द ही नहीं जो उत्पन्न हुआ उसी को शब्दत्व है तब विद्यमान शब्द को प्रयत्नावश्यकता अनित्यत्वका हेतु युक्त ही है कारणकी उपपत्ति होनेसे प्रागुत्पत्तेः कारणाभावात् यह दोष अयोग्य है ।

सामान्यदृष्टांतयोरैन्द्रियकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयसमः ॥१४॥

प्रयत्नानन्तरीयकत्वसे घटकी भांति शब्द अनित्य है ऐसा कहने पर हेतु में संदेह खड़ा होता है प्रयत्नानंतरीयकत्व रहते भी इस का नित्य सामान्य के साथ ऐंद्रियकत्व रूप साधर्म्य है और अनित्य घटके साथ भी समान धर्मता है इसलिये नित्यानित्य के साधर्म्य से संदेह निवृत्त न हुआ इस का समाधान ।

साधर्म्यात्संशये न संशयो वैधर्म्यादुभयथा वा संशयोऽत्यन्तसंशयप्रसङ्गो नित्यत्वा-

न्याभ्युपगमाच्च सामान्यस्याप्रतिषेधः ॥१५॥

जब विशेष वैधर्म्य से पुरुषका निश्चय होगया तब स्थाणु और पुरुष के साधर्म्य से संदेह को अवकाश नहीं मिलता ऐसे ही प्रयत्नानंतरीयकत्वरूप विशेष वैधर्म्यसे शब्दके अनित्यत्वका जब निश्चय होगया तब नित्य और अनित्य के साधर्म्यसे संदेहको अवकाश नहीं होता यदि हो तो स्थाणु और पुरुषके साधर्म्य के अभाव न होने से अत्यन्त संदेह होजाय और जब विशेष का ज्ञान होगया तब नित्यका साधर्म्य संशय का हेतु नहीं हो सकता क्योंकि पुरुष के विशेषत्वके ज्ञान हुए पीछे स्थाणु और पुरुषका साधर्म्य संदेहका हेतु नहीं होता है ।

उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमः ॥१६॥

नित्य और अनित्य इन दोनोंके साधर्म्य से पक्ष और प्रतिपक्ष की प्रवृत्ति को प्रक्रिया कहते शब्द अनित्य है प्रयत्नानंतरीयकत्व से घट की नाईं इस रीति एक पक्ष को प्रवृत्त करता है और दूसरा नित्यके साधर्म्यसे शब्दको नित्य सिद्धि करता है ऐसा होनेसे प्रयत्नानंतरीयकत्व हेतु अनित्यत्व साधर्म्य से कथन करने पर प्रकरणकी अनतिवृत्ति से प्रत्यवस्थान हुआ इसलिये प्रकरणसम है और यह वैधर्म्यमें भी समान है उभय वैधर्म्य से प्रक्रिया सिद्धि के कारण प्रकरणसम हुआ इस का उत्तर ।

प्रतिपक्षात् प्रकरणसिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः प्रतिपक्षोपपत्तेः ॥१७॥

उभयसाधर्म्य से प्रक्रिया सिद्धि कहनेवाले ने प्रतिपक्ष से प्रक्रिया सिद्धि कही जो दो का साधर्म्य है तो एक प्रतिपक्ष हुआ प्रतिपक्ष की उपपत्ति होने से प्रतिषेध अनुपपन्न हुआ क्योंकि प्रतिपक्ष की उपपत्ति और प्रतिषेधकी उपपत्ति यह परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् प्रतिपक्षकी उपपत्ति और प्रतिषेधकी उपपत्ति दोनों एकत्र नहीं रहती तत्वके अनवधारण से प्रक्रियासिद्धि होती विपर्यय में प्र-

करण के समाप्त होने से तत्व के निश्चय होने पर प्रकरण समाप्त होजाता है ।

त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमः ॥१८॥

हेतु कहते हैं साधनको वह साध्यसे पहिले पीछे वा साथ होगा जो कहो पहिले होना चाहिये तो साध्य के न रहते किस का साधन होगा जो कहो पीछे तो साधन के न होने से यह किस का साध्य कहावेगा अब कहो कि साध्य और साधन साथ ही हैं तो दोनों की विद्यमानता में कौन किस का साधन और कौन साध्य कहावेगा इसलिये. हेतु से विशेषता न हुई अहेतु के साथ साधर्म्य होने से अहेतुसम प्रत्यवस्थान हुआ इस का समाधान ।

न हेतुतःसाध्यसिद्धेः त्रैकाल्यासिद्धिः ॥ १९ ॥

हेतु से साध्य की सिद्धि होती है इसलिये त्रैकाल्य असिद्धि नहीं संपादनीयकार्यकी उत्पत्ति और ज्ञेय वस्तु का ज्ञान यह दोनों कारण से देखने में आते हैं यह बड़ा प्रत्यक्ष विषय उदाहरण है ।

प्रतिषेधानुपपत्तेः प्रतिषेद्धव्याप्रतिषेधः ॥ २० ॥

पहिले पीछे अथवा एक साथ प्रतिषेधसिद्ध नहीं होता और प्रतिषेध की अनुपपत्ति से स्थापना हेतु सिद्ध हुआ ।

अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमः ॥ २१ ॥

शब्द अनित्य है प्रयत्नानन्तरीयकत्व से जैसा घट इस पक्ष के स्थापन करने पर अर्थापत्ति से प्रतिपक्ष के साधन करनेवाले को अर्थापत्तिसम हुआ जो प्रयत्नानन्तरीयकत्वरूप अनित्य साधर्म्य से शब्द अनित्य है तो यह अर्थात् सिद्ध होता है कि नित्य के साधर्म्य से नित्य है और अस्पर्शत्वरूप साधर्म्य नित्य के साथ इसका विद्यमान है इसका उत्तर ।

अनुक्तस्यार्थापत्तेः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वादनैकान्तिकत्वाच्चार्थापत्तेः ॥२२॥

सामर्थ्य का उपपादन न कर के अनुक्त अर्थात् सिद्ध होता है इस प्रकार कहने वाले के अनुक्तत्व से पक्ष हानि की उपपत्ति होती है अनित्यपक्ष की सिद्धि होने पर अनित्य पक्ष की हानि अर्थात् सिद्ध होती है अर्थापत्ति के अनैकांतिक होने से यह अर्थापत्ति उभयपक्ष समान है जे अस्पर्शत्वरूप नित्य साधर्म्य से आकाश की नाईं शब्द नित्य है तो प्रयत्नानन्तरीयकत्वरूप अनित्य साधर्म्य से शब्द अनित्य है यह अर्थात् सिद्ध होता है और यह विपर्ययमात्र से आवश्यक अर्थापत्ति नहीं है घने पत्थर के गिरने से यह निश्चय नहीं होता कि द्रवी भूत जलों के पतन का अभाव अर्थात् सिद्ध है ।

एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्व्वाविशेषप्रसंगात् सद्भावोपपत्तेरविशेषसमः ॥ २३ ॥

प्रयत्नानन्तरीयकत्वरूप एकधर्म शब्द घट का सिद्ध होने से देनों के अनित्यत्व में अविशेषता हुई तब सबका अविशेष प्राप्त हुआ सद्भाव की उपपत्ति से क्योंकि सद्भावरूप एक धर्म सब का उपपन्न है तब सद्भाव की उपपत्ति से सर्वाविशेष प्रसंग होगा और तब अविशेषसम प्रत्यवस्थान प्राप्त होगा इस का उत्तर ।

क्वचिद्धर्म्मानुपपत्तेः क्वचिच्चोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ॥ २४ ॥

जैसे साध्य और दृष्टांत का प्रयत्नानन्तरीयकत्वरूप एक धर्म की उपपत्ति होने से अविशेष कर के अनित्यत्व धर्मांतर है वैसे सब पदार्थों का सद्भावोपपत्ति निमित्त धर्मांतर नहीं है जिस से अविशेष हो यदि कहो कि अनित्यत्वरूप धर्मांतर ही सद्भावोपपत्ति निमित्त भावों का सर्वत्र हो तो ऐसी कल्पना करने से सब पदार्थ अनित्य हैं सद्भावोपपत्ति से यह पक्ष प्राप्त होता है वहां प्रतिज्ञात अर्थ से भिन्न दूसरा उदाहरण नहीं है और वे उदाहरण का हेतु नहीं होता प्रतिज्ञा के एक देश के उदाहरणत्व उपपन्न नहीं होता क्योंकि साध्य उदाहरण नहीं होसक्ता है इसलिये नित्यानित्यभाव से अनित्यत्व

की अनुपपत्ति होती है तिस से सद्भाव की उपपत्ति से सर्वाविशेष प्रसंग हो जायगा यह वाक्य निरर्थक है सद्भावोपपत्ति से सब भावों के अनित्यत्व कहनेवाले ने शब्दका अनित्यत्व मान लिया तब प्रतिषेध अनुपपन्न हुआ ।

उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमः ॥ २५ ॥

यदि शब्द के अनित्यत्व का कारण मिलता है तो शब्द अनित्य है इस के नित्यत्व का कारण अस्पर्शत्व भी उपलब्ध है तो नित्यत्व भी सिद्ध होता है अनित्यत्व और नित्यत्व इन देनों के कारणों की उपपत्ति से प्रत्यवस्थान उपपत्तिसम हुआ इस का समाधान ।

उपपत्तिकारणाभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः ॥२६॥

उभय कारण की उपपत्ति से ऐसे कहनेवाले ने अनित्यत्व के कारण की उपपत्ति से अनित्यत्व का खंडन नहीं किया यदि न माने तो उभय कारण की उपपत्ति नहीं होसक्ती तब उभय कारणोपपत्ति कहने से अनित्यत्व कारणकी उपपत्ति स्वीकारकी गई तब प्रतिषेध अनुपपन्न हुआ यदि कहो व्याघातसे प्रतिषेध होगा तो यह व्याघात देनों को तुल्य है एक के नित्यत्व अनित्यत्व का प्रसंग व्याहत है ऐसे कहने वाले ने प्रतिषेध कहा तो यह व्याघात स्वपक्ष और पर पक्ष में समान है और वह दे में से एक का साधक नहीं होसक्ता है ।

निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमः ॥ २७ ॥

उक्त प्रयत्नानन्तरीयकत्वरूप अनित्यत्व कारण के अभाव रहते भी वायु की प्रेरणा से वृक्ष की शाखा के टूटने से उत्पन्न शब्द का अनित्यत्व उपलब्ध होता है निर्दिष्ट साधन के अभाव में भी साध्य धर्म की प्राप्ति से प्रत्यवस्थान उपलब्धिसम हुआ इस का उत्तर ।

कारणान्तरादपि तद्धर्मोपपत्तेरप्रतिषेधः ॥२८॥

प्रयत्नानन्तरीयकत्व कहनेवालेने कारणसे उत्पत्ति कही कार्यके कारणका नियम नहीं है यदि दूसरेकारणसेभी उत्पन्न हुए शब्दके अनित्यत्व

होजायतो इसमें क्या प्रतिषेध है उच्चारणके पूर्व विद्यमान शब्दकी अनुपलब्धि नहीं आवरण आदिकी अनुपलब्धि से जैसे विद्यमान जलादि वस्तुओंकी अनुपलब्धि आवरण आदिके कारण होती है वैसी शब्दकी नहीं इस के अग्रहण का कारण जलादिकों की नाईं गृहीत नहीं होता है इसलिये जलादि बिपरीत शब्द अनुपलभ्यमान है ।

तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपलब्धिसमः ॥२९॥

उन आवरणादिकों की अनुपलब्धि उपलब्ध नहीं होती है अनुपलंभ होने से नहीं है इस प्रकार इसका अभाव सिद्ध होता है अभाव सिद्ध होने पर हेतु के न होने से आवरण आदिकों का विपरीत अस्तित्व निश्चित होता है उस विपरीत उपपत्ति से जो प्रतिज्ञा की थी कि उच्चारण के पूर्व विद्यमान शब्द की अनुपलब्धि नहीं यह सिद्ध नहीं होता है इसलिये यह हेतु आवरणादि की अनुपलब्धि से आवरणादि कों में आवरणादिकी अनुपलब्धि होने पर समयकी अनुपलब्धि से अनुपलब्धिसमप्रत्यवस्थित होता है इसका समाधान ।

अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ॥ ३० ॥

अनुपलम्भ से आवरण आदि कों की अनुपलब्धि है यह हेतु ठीक नहीं क्योंकि अनुपलब्धि अनुपलम्भ स्वरूप है जो है वह उपलब्धि के विषय है उपलब्धि से वह है ऐसी प्रतिज्ञा की जाती है जो नहीं है वह अनुपलब्धि का विषय है और अनुपलभ्यमान जो है वह नहीं है ऐसे प्रतिज्ञात होता है इसलिये आवरणादि अनुपलब्धि से हुआ अनुपलम्भाभाव स्वविषय अनुपलब्धि में प्रवर्तमान स्वविषय का निषेध नहीं करता है और अप्रतिषिद्ध आवरणादिकों की अनुपलब्धि हेतु हो सक्ती है आवरणआदि विद्यमान होने से उपलब्धि के विषय हैं तो उनकी उपलब्धि होनी चाहिये और जो वह उपलब्ध नहीं होते हैं तो स्वविषय प्रतिपादक उपलब्धि के न होने से अनुपलंभ से अनुपलब्धि का विषय ज्ञात होता है शब्द के अग्रहण के कारण

आवरणादि नहीं हैं अनुपलंभ से अनुपलब्धि सिद्ध होती है क्योंकि वह उस का विषय है ।

ज्ञानविकल्पानाञ्च भावाभावसंवेदनादध्यात्मम् ॥ ३१ ॥

अहेतु इस पद का संबंध यहां है आत्मा में शरीर संबंधी ज्ञान बिकल्पों के भाव अभाव संवेदनीय हैं मुझ को संदेहका ज्ञान है मुझको संदेह का ज्ञान नहीं ऐसे ही प्रत्यक्ष अनुमान शब्द और स्मृति के ज्ञानों में जानना चाहिये यह आवरणादिकों के उपलब्धिका अभाव स्वसंवेद्य है मुझको शब्दके आवरणादिकोंकी अनुपलब्धि नहीं है इस लिये शब्द के अग्रहणकारण आवरण आदि उपलब्ध नहीं होते तब अनुपलब्धि के अनुपलंभ से अभावकी सिद्धि है यह कहना उचित नहीं है ।

साधर्म्यात्तुल्यधर्म्मोपपत्तेः सर्व्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमः ॥ ३२ ॥

अनित्य घट के साधर्म्य से शब्द अनित्य है ऐसा कहनेवाले को अनित्य घट के साथ सब पदार्थों का साधर्म्य है इसलिये सब का अनित्यत्व रूप अनिष्ट प्राप्त होता है अनित्यत्व के साथ प्रत्यवस्थान होने से अनित्यसम हुआ इस का उत्तर ।

साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधासिद्धिः प्रतिषेध्यसाधर्म्याच्च ॥ ३३ ॥

प्रतिज्ञा आदि अवयवयुक्त वाक्य पक्षका साधक होता है प्रतिषेध प्रतिपक्ष स्वरूप है उस का प्रतिषेध्य पक्ष के साधर्म्य प्रतिज्ञा आदि योग है तब जो अनित्य के साधर्म्य से अनित्यत्व की असिद्धि होगी तो साधर्म्य से असिद्धि के प्रतिषेध की भी असिद्धि होगी प्रतिषेध्य के साथ साधर्म्य होने से ।

दृष्टान्ते च साध्यसाधनभावेन प्रज्ञातस्य धर्मस्य हेतुत्वात्तस्य चोभयथाभावान्नाविशेषः॥३४॥

दृष्टांत में निश्चित जो धर्म साध्यसाधनभाव से ज्ञात होता है वह हेतु कहा जाता है और वह दो प्रकार से होता है किसी से समान और किसी से विशेष होता है सामान्य से साधर्म्य और विशेष से वैधर्म्य इस प्रकार साधर्म्य विशेष हेतु होता है न कि अविशेष से साधर्म्य मात्र वा केवल वैधर्म्य साधर्म्य मात्र और वैधर्म्य मात्र का आश्रा लेकर आप कहते हैं कि साधर्म्यात्तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसंगाद् नित्य सम इति (इस सूत्र का अर्थ प्रथम पृष्ट में लिखा है वहां देख लेना) यह अयुक्त है और अविशेषसम के प्रतिषेध में जो कहा गया वह भी जान लेना चाहिये ।

नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः ॥ ३५ ॥

शब्द अनित्य है ऐसी प्रतिज्ञा करते हो तो वह अनित्यत्व शब्द में नित्य है वा अनित्य जो सदा है तो धर्म के सदा होने से धर्मी का भी सदा होना सिद्ध होगा तो शब्द नित्य हुआ जो कहो सर्वदा नहीं होता तो अनित्यत्व के अभाव से शब्द नित्य हुआ इस प्रकार नित्यत्व रूप प्रत्यवस्थान से नित्यसम हुआ इस का समाधान ।

प्रतिषेध्ये नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः ॥ ३६ ॥

प्रतिषेध्य शब्द में नित्यत्व अनित्य होने से ऐसा कहने पर शब्द का अनित्यत्व अनुमत हुआ और अनित्यत्व की उपपत्ति से शब्द अनित्य नहीं यह निषेध युक्त नहीं होसक्ता यदि नहीं मानते तो नित्य अनित्यत्व के भाव से यह हेतु नहीं होता है तब हेतु के न होने से प्रतिषेध की अनुपपत्ति हुई उत्पन्न का निरोधसे अभाव होना शब्द का अनित्यत्व है वहां प्रश्न की अनुपपत्ति है तब यह प्रश्न शब्द में नित्यत्व क्या सर्वदा होता है अथवः नहीं अनुपपन्न है क्योंकि उत्पन्न का जो निरोध से न होना शब्द का यही अनित्यत्व है ऐसा होने से आधाराधेय विभाग बाधित होने से नहीं है इसलिये नित्य और अनित्य के विरोध से एक धर्मी के नित्यत्व और अनित्यत्व यह परस्पर विरुद्ध दो धर्म संभवते नहीं तब जो कहा था कि नित्य अनित्यत्व के भाव से नित्य ही है यह ठीक नहीं ।

प्रयत्नकार्य्यानेकत्वात्कार्य्यसमः ॥ ३७ ॥

प्रयत्न के आनंतरीयकत्व से शब्द अनित्य है जिस के प्रयत्न के अनंतर स्वरूप का लाभ है वह न होकर होता है जैसे घट आदि कार्य अनित्य हैं और जो होकर नहीं होता है ऐसी अवस्था रहते प्रयत्नकार्यानेकत्वात् यह प्रतिषेध कहाजाता है प्रयत्नके अनंतर घटादिकों का स्वरूपलाभ देखाजाता और आड़ के हटाने से व्यवहित पदार्थों की अभिव्यक्ति(अर्थात् प्रगट होना) होतीहै तो क्या प्रयत्नके अनन्तरशब्दके स्वरूपका लाभ होता अथवा अभिव्यक्ति होती है इसमें विशेष नहीं है कार्याविशेष से प्रत्यवस्थान होने से कार्यसम हुआ इसका उत्तर ।

कार्य्यान्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धिकारणोपपत्तेः ॥३८॥

कार्यान्यत्व रहते अनुपलब्धिकारणकी उपपत्ति से शब्द की अभिव्यक्तिकेलिये प्रयत्न को कारणत्व नहीं जहां प्रयत्नके अनन्तर अभिव्यक्ति है वहां अनुपलब्धिकारण व्यवधान उपपन्न होता है और व्यवधान के दूर होने से प्रयत्न के अनंतर होने वाले अर्थकी उपलब्धि रूप अभिव्यक्ति होती है न कि शब्दकी अनुपलब्धि का कुछ कारण उपपन्नहोता है जिसके प्रयत्नके अनंतर व्यवधान के हटनेसे शब्दकी उपलब्धि रूप अभिव्यक्ति होती है इसलिये शब्द उत्पन्न होता है अभिव्यक्त नहीं होता ।

प्रतिषेधेऽपि समानो दोषः ॥३९॥

जो हेतुको अनैकांतिकत्व से असाधक कहोगे तो प्रतिषेध भी अनैकांतिक है किसीका प्रतिषेध करता और किसीका नहीं करता है अनैकांतिकत्व से असाधक हुआ अथवा शब्द के अनित्यत्वपक्षमें प्रयत्नके अनंतर उत्पत्ति होती अभिव्यक्ति नहीं इस में विशेष हेतुका अभाव है यदि ऐसा कहोतो नित्यत्व पक्षमें भी प्रयत्नके अनंतर अभिव्यक्ति होती उत्पत्ति नहीं इसमें विशेष हेतु नहीं इसलिये विशेष हेतुका अभाव उभय पक्ष में सम है इसलिये दोनोंही अनैकांतिक हुए ।

सर्वत्रैवम् ॥४०॥

साधर्म्य आदि सब प्रतिषेध हेतुओं में जहां विशेष देख पड़ता है वहां देनों पक्षों में समान प्राप्त होता है ।

प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोषः ॥४१॥

प्रतिषेधमें भी जो यह अनैकांतिकत्व रूप समान दोष लगाते हो सो यह प्रतिषेधके प्रतिषेध में भी समान है ।

प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे समानो दोषप्रसंगो मतानुज्ञा ॥ ४२ ॥

प्रतिषेध को दोष सहित मान कर उस का उद्धार न कर के प्रतिषेध के विप्रतिषेध में समान दोष वाले दूषणवादी को मतकी अनुज्ञा प्रसक्त होती है ।

स्वपक्षलक्षणापेक्षोपपत्त्युपसंहारे हेतुनिर्देशे परपक्षदोषाभ्युपगमात्समानो दोष इति ॥ ४३ ॥

स्थापना पक्ष पर प्रयत्न कार्यानेकत्वात् यह दोष स्थापना हेतु वादी को स्वपक्षलक्षण होता है क्योंकि अपने पक्ष पर उठा है सो यह स्वपक्षलक्षण दोष को विना हटाए उस को मान कर प्रतिषेध में भी समान दोष है इस उपपद्यमान दोष को पर पक्ष में सिद्ध करताहै अथवा इस प्रकार अनैकांतिक प्रतिषेध है इस हेतु का प्रदर्शन करता है वहां स्वपक्षलक्षणापेक्षा से उपपद्यमान दोषके उपसंहार और हेतु निदर्शन होने से इस ने पर पक्ष का स्वीकार किया क्योंकि दूसरे ने जो प्रयत्न कार्य्यानेकत्वात् इत्यादि कह कर अनैकांतिक दोष कहा था उस का उद्धार न कर प्रतिषेध में भी समान दोष है जैसे दूसरे के दोष सहित प्रतिषेध को मान कर प्रतिषेध में भी समान दोष प्रसंग वाले को पर पक्ष के अंगीकार से समान दोष होता है जिस प्रकार पर के सदोष प्रतिषेध को मान कर प्रतिषेध में भी तुल्य दोष प्रसंग वाले को मतानुज्ञा प्राप्त होती है यह छठा पक्ष होता है वहां स्थापना हेतु वादी के पहिला तीसरा और पांचवां यह पक्ष हैं निषेध हेतु वादी के दूसरा

चौथा और छठा यह पक्ष हैं उन की साधुता और असाधुता के विचार होने पर चौथे और छठे में विशेष न होने से पुनरुक्त दोष आता है चौथे पक्ष में दूसरे को समान दोषत्व कहा जाता है प्रतिषेध विप्रतिषेध में भी प्रतिषेध दोष के समान दोष है इस छठे पक्ष में भी पर पक्ष के स्वीकार से समानदोष आता है यह समान दोषत्व ही कहा गया कोई विशेष अर्थ नहीं हुआ तीसरे और पांचवे पक्ष में पुनरुक्त दोष समान है तीसरे पक्ष में भी प्रतिषेधमें भी समान दोष है यह समानत्व माना जाता है पांचवें पक्ष में भी प्रतिषेध के प्रतिषेध में समान दोष प्रसंग माना कुछ विशेष अर्थ नहीं कहा गया वहां पांचवें और छठे पक्ष में अर्थ के अविशेष से पुनरुक्त दोष आता और तीसरे चौथे पक्ष में मत की अनुज्ञा प्राप्त होती पहिले दूसरे पक्ष में विशेष हेतु का अभाव होता है इसलिये छ पक्षों में दोनें की असिद्धि है षट् पक्ष कब होते कि जब प्रतिषेध में भी समान दोष है यह बात प्रवृत्त होती है तब दोनें पक्षों की सिद्धि नहीं होती जब तो कार्य्यान्यत्व में प्रयत्न को हेतुता नहीं अनुपलब्धि कारण की उपपत्ति से इस से तीसरा पक्ष युक्त होता है तब विशेष हेतु कहने से प्रयत्न के अनंतर शब्द के स्वरूप का लाभ होता अभिव्यक्ति नहीं इसलिये पहिला पक्ष सिद्ध होता छ पक्ष प्रवृत्त नहीं होते हैं ।

विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्ति के विकल्प से निग्रहस्थान बहुत हैं यह संक्षेप से कहा इसलिये अब विभाग करना प्राप्त है निग्रहस्थान पराजय वस्तु अपराधाश्रित हैं बहुत कर के प्रतिज्ञा आदि अवयवों के आश्रय हैं तत्व वादी और अतत्व वादी को दशाते उन का विभाग करते हैं ।

प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं प्रतिज्ञाविरोधः प्रतिज्ञासंन्यासो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकमविज्ञातार्थमपार्थकमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरुक्तमननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विक्षेपो मतानुज्ञा पर्य्यनुयोज्योपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽ-

पसिद्धान्तो हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि ॥४४॥

प्रतिज्ञानिहानि आदि यह बाईस निग्रहस्थान हैं इन का विभाग कर लक्षण लिखते हैं ।

प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः ॥ ४५ ॥

साध्यधर्म के बिरुद्ध धर्म से प्रतिषेध करने पर प्रति दृष्टांत के धर्म को अपने दृष्टांत में मानने वाला प्रतिज्ञा छोडता है इसको प्रतिज्ञा हानि कहते हैं उदाहरण इन्द्रिय के विषय होने से घट की नाई शब्द अनित्य है ऐसी प्रतिज्ञा करने पर दूसरा कहता है नित्य जाति में इन्द्रिय बिषयत्व है तो वैसे ही शब्द भी क्यों नहीं ऐसे निषेध पर यह कहता है कि जो इन्द्रिय बिषय जाति नित्य है तो घट भी नित्य हो ऐसा मानने वाला साधक दृष्टांत का नित्यत्व मान कर निगमन तक ही पक्ष को छोड़ताहै पक्षका छोड़ना प्रतिज्ञाका छोड़ना है क्योंकि पक्ष प्रतिज्ञा के आश्रय है ।

प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्द्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ॥ ४६ ॥

प्रतिज्ञात अर्थ के प्रतिषेध होने पर धर्म के बिकल्प से उस के अर्थ के निर्देश को प्रतिज्ञांतर कहते हैं प्रतिज्ञात अर्थ है शब्द अनित्य है इंद्रिय विषय होनेसे घटकीनाईं ऐसा कहनेपर जोइस का प्रतिषेध है प्रति दृष्टांत से हेतुका व्यभिचार कि इंद्रिय विषय जाति नित्य है प्रतिज्ञात अर्थ के प्रतिषेध होने पर धर्म विकल्प से दृष्टांत और प्रति दृष्टांत के समान धर्मत्व होने से इंद्रिय विषय जाति सर्बगत है और इंद्रिय विषय घट सर्बगत नहीं इस प्रकार धर्म के भेद से साध्य की सिद्धि के लिये जैसे घट सर्ब गत नहीं ऐसे ही शब्द भी सर्बगत न होने से घटकी भांति अनित्यहो अबयहां शब्द अनित्य है यह पहिली प्रतिज्ञा शब्द सर्व गतनहीं यह दूसरी इसको पराजय स्थान क्यों कहते इसका हेतु यहहै कि प्रतिज्ञा की साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सक्ती किन्तु प्रतिज्ञा के साधक हेतु और दृष्टांत होतेहैं तब असाधक का ग्रहण व्यर्थ हुआ और निरर्थक होने से निग्रहस्थान कहा जाता है ।

प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः ॥ ४७ ॥

प्रतिज्ञा और हेतु के बिरोध को प्रतिज्ञा विरोध कहते हैं द्रव्यगुण से भिन्न है यह प्रतिज्ञा और रूप आदिकों से अर्थान्तर की अनुपलब्धि होने से यह हेतु है यह परस्पर बिरोधी हैं क्योंकि जो द्रव्य गुण से भिन्न है तो रूपादिकों से भिन्न अर्थ की अनुपलब्धि यह कहना ठीक नहीं होता और जो रूप आदिकों से भिन्न अर्थ की अनुपलब्धि हो तो गुण से भिन्न द्रव्य यह कहना नहीं बनता अर्थात् यह दोनों बात संभव नहीं हो सक्तीं ।

पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासन्न्यासः ॥ ४८ ॥

पक्षके निषेध होने पर प्रतिज्ञात अर्थ काछोड़ देना प्रतिज्ञासंन्यास कहाताहै इंद्रिय विषय होनेसे शब्द अनित्यहै ऐसा कहनेपर दूसरा कहे कि जाति इन्द्रिय बिषय है और अनित्य नहीं इसी प्रकार शब्द भी इन्द्रिय विषय है पर अनित्य न हो ऐसे पक्ष के निषेध होने पर यदि कहे कि कौन कहता है कि शब्द अनित्य है यह प्रतिज्ञा किये हुए अर्थ का छिपाना है इसी को प्रतिज्ञा संन्यास कहते हैं ।

अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ॥ ४९ ॥

अविशेष रूप से कहे हेतु के निषेध करने पर विशेष की इच्छा करने वाले को हेत्वन्तर निग्रहस्थान प्राप्त होता है जैसे यह व्यक्त एक प्रकृतिक है यह प्रतिज्ञा है एक प्रकृतिवाले बिकारों के परिणाम से यह हेतु है मिट्टी से बने शरबा आदि कों का परिमाण दृष्ट है जितना प्रकृति का व्यूह होता है उतना ही विकार होता है और यह परिमाण प्रतिव्यक्त है यह एक प्रकृति वाले विकारों के परिमाण से देखा जाता है इस से सिद्ध हुआ कि यह व्यक्त एक प्रकृतिक है इस का

व्यभिचार से निषेध करते हैं कि अनेक प्रकृति वाले और एक प्रकृति वाले विकारों का परिमाण देखा गया है ऐसे निषेध करने पर कहता है कि एक प्रकृति के समन्वय रहते शराब आदिविकारों के परिमाण देखने से यह व्यक्त सुख दुःख मोह से युक्त परिमित ग्रहण किया जाता है वहां प्रकृत्यंतर रूप समन्वयके अभाव रहते एक प्रकृतित्व यह सामान्यरूपसे कहे हेतु के निषेध करने पर विशेष कहने वाले को हेत्वंतर होता है और जब दूसरा हेतु होगया तब पहिले हेतुको साधक नहीानेसे निग्रह-स्थान हुआ अर्थात् किसी प्रतिज्ञा के सिद्धि के लिये साधारण रूप से कोई हेतु कहा फिर जब किसी ने उस पर कोई दोष देदिया तब उसी हेतु में और एक विशेषण लगादिया तो यह हेत्वन्तर नामक निग्रह-स्थान हुआ ।

प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम् ॥५०॥

प्रकृत अर्थ से संबंध न रखने वाले अर्थको अर्थांतर कहतेहैं जैसेकोई कहे कि शब्द नित्यहै अस्पर्शत्वसे यह हेतु है हेतु किसे कहते हिधातु से तु प्रत्यय करनेसे हेतु यह कृदंत पद हुआ और नाम आख्यात उपसर्ग और निपात यह पद हैं यह प्रकृत अर्थसे कुछ संबंध नहीं रखता इसलिये अर्थान्तर नाम निग्रहस्थान हुआ ।

वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ॥५१॥

वर्णक्रमनिर्देश वाला निरर्थक कहाता है जैसे शब्द कचटतप नित्य है जबगडदशत्व से झभञ घढधष की नाईं इस प्रकार का निरर्थक कहा जाता क्योंकि नाम और अर्थ की अनुपपत्ति से अर्थबोध के न होने से वर्ण ही क्रम से उच्चरित हुए यह निरर्थक होने से निग्रह स्थान कहाता है ।

परिषत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितमप्य-विज्ञातमविज्ञातार्थम् ॥ ५२ ॥

जो वाक्य तीनवार कहा गया भी सभा और प्रतिवादी से श्लिष्ट शब्द अप्रतीत प्रयोग और अति शीघ्र उच्चारण इत्यादि कारणों से न

जाना गया उसे अविज्ञातार्थ कहते हैं अशक्ति छिपाने के लिये प्रयोग किया गया इसलिये निग्रहस्थान है ।

पौर्वापर्य्यायोगादप्रतिसम्बद्धार्थमपार्थकम् ॥ ५३ ॥

जहां अनेक पद अथवा वाक्यों का पूर्व पर क्रम से अन्वय नहीं इसलिये असम्बद्धार्थत्व जाना जाता है वह समुदाय अर्थ के अपाय से अपार्थक कहाता है जैसे दश दाड़िम छ अपूप कुण्ड अजा अजिन मांस पिंड इत्यादि इसे भी निग्रहस्थान कहते हैं ।

अवयवविपर्य्यासवचनमप्राप्तकालम् ॥ ५४ ॥

प्रतिज्ञा आदि अवयवों का लक्षणानुसार अर्थ वश से क्रम है वहां अवयवों के उलटने से वचन को अप्राप्त काल अर्थात् असंबंधार्थ काल निग्रहस्थान कहते हैं ।

हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ॥ ५५ ॥

प्रतिज्ञा आदि अवयवों में से किसी एक अवयव से हीन को न्यून इस नाम से निग्रहस्थान कहते हैं ।

हेतूदाहरणाधिकमधिकम् ॥५६॥

हेतु और उदाहरणों के अधिक होनेसे अधिकनाम निग्रहस्थान कहाता है एकसे कार्य सिद्ध होगया तब दो में से एक को अनर्थकत्व होगा यह बात नियम के मान लेने पर है अन्यथा नहीं ।

शब्दार्थयोः पुनर्बचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ॥५७॥

अनुवाद को छोड़ कर शब्द और अर्थके पुनर्बचन को पुनरुक्त कहते हैं जैसे नित्य शब्द नित्यशब्द यह शब्द पुनरुक्त हुआ अनित्य शब्द निरोधधर्मक ध्वनि यह अर्थ पुनरुक्त कहाता है अर्थात शब्द तो भिन्न हैं पर अर्थ वही हैं ।

अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषो
पपत्तेः ॥५८॥

अनुवाद में तो पुनरुक्त नहीं कहाता शब्द के अभ्यास से अर्थ विशेष की उपपत्ति होती है जैसे हेतु के अपदेश से प्रतिज्ञा का पुनर्वचन निगमन होता है।

अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् ॥५९॥

अर्थात् सिद्ध का स्ववाचक शब्द से पुनर्वचन पुनरुक्त कहाता उदाहरण उत्पत्ति धर्मक होने से अनित्य है ऐसा कह कर अर्थात् सिद्ध जो अनुत्पत्ति धर्म वाला नित्य है उस के वाचक शब्द से फिर कहे कि अनुत्पत्ति धर्मक नित्य है इस को पुनरुक्त जानना चाहिये क्योंकि अर्थ बोध के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है वह अर्थ तो अर्थापत्ति प्रमाण से ज्ञात होगया फिर उसके प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है।

विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याप्य-
नुच्चारणमननुभाषणम् ॥ ६० ॥

विज्ञात वाक्यार्थ का प्रतिवादी ने तीन वार उच्चारण भी किया उस का प्रत्युच्चारण न करना अननुभाषण नाम निग्रहस्थान होता है उच्चारण ही न करेगा तो किस के आश्रय से दूसरे के पक्ष का खंडन करेगा।

अविज्ञातं चाज्ञानम् ॥ ६१ ॥

प्रतिवादी से तीन वार कहे गये विज्ञात अर्थ के अविज्ञान को अज्ञान नाम निग्रहस्थान कहते हैं यह न जान कर किस का निषेध कर सक्ता है।

उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ॥६२॥

परपक्ष के निषेध को उत्तर कहते हैं वह जब उपस्थित नहीं होता तब पराजित होता है उत्तर का नकुरना अप्रतिभा कहाती है।

कार्य्यव्यासंगात् कथाविच्छेदो विक्षेपः
॥ ६३ ॥

जहां कार्य के व्यासंग से कथा का विच्छेद किया जाता उसे विक्षेप नाम निग्रहस्थान कहते हैं जैसे यह कार्य मुझे अवश्य करनाहै इस के पूरे होने पर कहूंगा एक के पराजयमें पूरी होने वाली कथा में आपही दूसरी कथा को लाता है।

स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्र-
संगो मतानुज्ञा ॥ ६४ ॥

जो दूसरे से दिये दोष को स्वपक्ष में मानकर और उस का उद्धार विनकिये तुह्मारे पक्ष में भी यह दोष समान है ऐसा कहता है वह अपने पक्ष में दोष के अंगीकार से दूसरे के पक्ष पर दोषलगाता हुआ पर के मत को मानता है इसलिये यह मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थान को पाता है।

निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रहः पर्य्यनुयो-
ज्योपेक्षणम् ॥ ६५ ॥

निग्रहस्थान में प्राप्त हुए का निग्रह न करना पर्यनुयोज्योपेक्षण नाम निग्रहस्थान कहाता है यह किस का पराजय है यह सभा को कहना चाहिये क्योंकि जो निग्रहस्थान में आया है वह निश्चय अपनी पत आप नही उघाड़ेगा।

अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो नि-
रनुयोज्यानुयोगः ॥ ६६ ॥

जो निग्रहस्थान नहीं है उस में तुम निग्रहस्थान में आगये ऐसे अभियोग को निरनुयोज्यानुयोग निग्रस्थान कहते हैं अर्थात् निग्रहस्थान लक्षण के मिथ्या ज्ञान होनेसे अनिग्रहस्थान में तू पराजित हुआ है ऐसे दूसरे को कहने वाले को निरनुयोज्य के अनुयोग से पराजित हुआ जानना चाहिये।

सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्-
गोऽपसिद्धान्तः ॥ ६७ ॥

सिद्धांत मानकर अनियम से कथा प्रसंग करना अपसिद्धांत है जैसे सत् वस्तु आत्मा को नहीं छोड़ता सत् का विनाश नहीं और असत् आत्मा का लाभ नहीं करता असत् की उत्पत्ति नहीं है इस सिद्धांत को मानकर अपने पक्ष को स्थापन करता है कि यह व्यक्त एक प्रकृतिकहै विकारों के संबंध दर्शन से मृत्तिका युक्त शराव आदिकोंका एक प्रकृतिपन देखा गया है वैसेही यह व्यक्तभेद सुख दुःख मोह विशिष्ट देखने में आताहै इसलिये संबंध दर्शन से सुखादिकों के साथ एक प्रकृतिबाला यह शरीरहै अब इसपर यह प्रश्न होताहै कि प्रकृति विकार इसका लक्षण किसप्रकार करना जिसके विद्यमान रहते एक धर्म के निवृत्त होनेपर दूसरा धर्म प्रवृत्त होताहैवहप्रकृति और जो धर्मान्तर प्रवृत्त होताहै वह विकार है यह प्रतिज्ञात अर्थके विपरीत होने से अनियमसे कथाका प्रसंग करताहै क्योंकि इसमें असत् का आविर्भाव नहीं और सत्का तिरोभावनहीं ऐसी प्रतिज्ञा कीथी और सत् असत् के तिरोभाव और आविर्भाव के विना किसी की प्रवृत्ति और प्रवृत्ति का उपराम नहीं होताहै निश्चय मृत्तिका के विद्यमान रहते शरावादि लक्षण धर्मान्तर होगा इसलिये प्रवृत्ति होतीहै और होगया इसलिये प्रवृत्तिका उपराम होताहै तब यह मृत्के धर्मो को भी नहो ऐसा निषेध करने पर जो सत्की आत्म हानि और असत् के आत्मलाभ को मानले तो इसको अपसिद्धांत रूप निग्रहस्थान प्राप्त होताहै और जो नमाने तो इसका पक्ष सिद्ध नहीं होता।

हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ॥ ६८ ॥

हेत्वाभास भी निग्रहस्थान हैं क्या हेत्वाभास दूसरे लक्षके योगसे निग्रहस्थानत्व को पहुंचते हैं जैसे प्रमाण प्रमेयत्व को इसलिये कहा कि यथोक्ताः अर्थात् हेत्वाभासके लक्षण से ही निग्रहस्थानत्व है इस प्रकार यह प्रमाण आदि पदार्थ उद्दिष्ट लक्षित और परीक्षित हुए तब

करुणासागर दीनबंधु परमात्मा को अनंत धन्यवाद हैं जिस की पूर्ण कृपा से महर्षि गौतम मुनि प्रणीत न्यायपारावार के पार को पहुंचा।

इति श्रीसनाढ्यकुलभूषण विद्वद्वरअनंतराम
मिश्रसूनुशालग्रामशास्त्रिविरचितायां
न्यायतत्वबोधिन्यां पंचमो
ध्यायःन्यायशास्त्रञ्च
समाप्तम्।

चैत्रकृष्णा १२ चंद्रवासरे संवत् १९४७
अपरेल् सन १८९१

राजस्थान समाचार ।

(चित्रों सहित)

" राजस्थान समाचार" नाम का साप्ताहिक समाचार पत्र "राजस्थान यन्त्रालय" अजमेर से सफेद चिकने चौपेजे रायल कागज के १२ पृष्ठ पर बहुत शुद्ध, सरल और सब के समझने योग्य हिन्दी भाषा में छप कर प्रत्येक बृहस्पतिवार को मार्च सन १८८९ से प्रकाशित होता है यह पत्र राजपूताना प्रदेश के निवासियों को ही क्या बरन सब भारत वासियों को बहुत कुछ लाभ पहुंचा रहा है। भारत वर्ष का प्रत्येक मनुष्य जो अपने देश और मातृभाषा से कुछ भी प्रेम रखता हो, राजनीति, सेना, युद्ध, देश के प्रबन्ध राजपूताना के तथा अन्य देशी और विदेशी राज्यों का वृत्तांत संसार भर के भांति भांति के समाचार विद्या के प्रचार, समाज के सुधार, व्यापार, खेती, कविता, देशी विदेशी राजा, देशहितैषी और महान पुरुषों के चित्र और जीवन चरित्र समाज धर्म और सेना सम्बन्धी सब प्रकार के ठीक२ समाचार जानना, राजनीति आदि बिषयों पर गंभीर तथा यथोचित लेख देखना चाहता हो वह इस समाचार पत्र को अवश्य ही मोल लेकर सदा पढ़ा करे और देश तथा परदेश में रहने वाले मारवाड़ी लोगों के लिये तो घर बैठे अपनी जन्म भूमि के समाचार जानने के लिये यह पत्र एक उत्तम उपाय है। यह पत्र अन्यायी अधिकारियों के सताये दीन लोगों की पुकार भी राजाओं तक पहुंचा देता है। शुद्ध भाषा लिखना पढ़ना तो इसे ध्यान से पढ़ने से शीघ्रही आजाता है विशेषता यह है कि प्रसिद्ध पुरुषों तथा स्थानादि के चित्र दिये जाते हैं अधिक लिखना ठीक नहीं इसलिये इतना ही लिखते हैं कि एक वेर इस को पढ़ देखें। वार्षिक मूल्य इसका डाकव्यय सहित ३॥) रु० है और नमूना =) भेजने से भेजा जा सकता है। बिना दाम आये किसी के पास नहीं भेजा जायगा पत्रादि इस पते पर भेजें:—

मनीषी समर्थदान
अध्यक्ष और सम्पादक राजस्थान समाचार
अजमेर।